# योगविद्या

वर्ष 15 अंक 1
जनवरी 2026

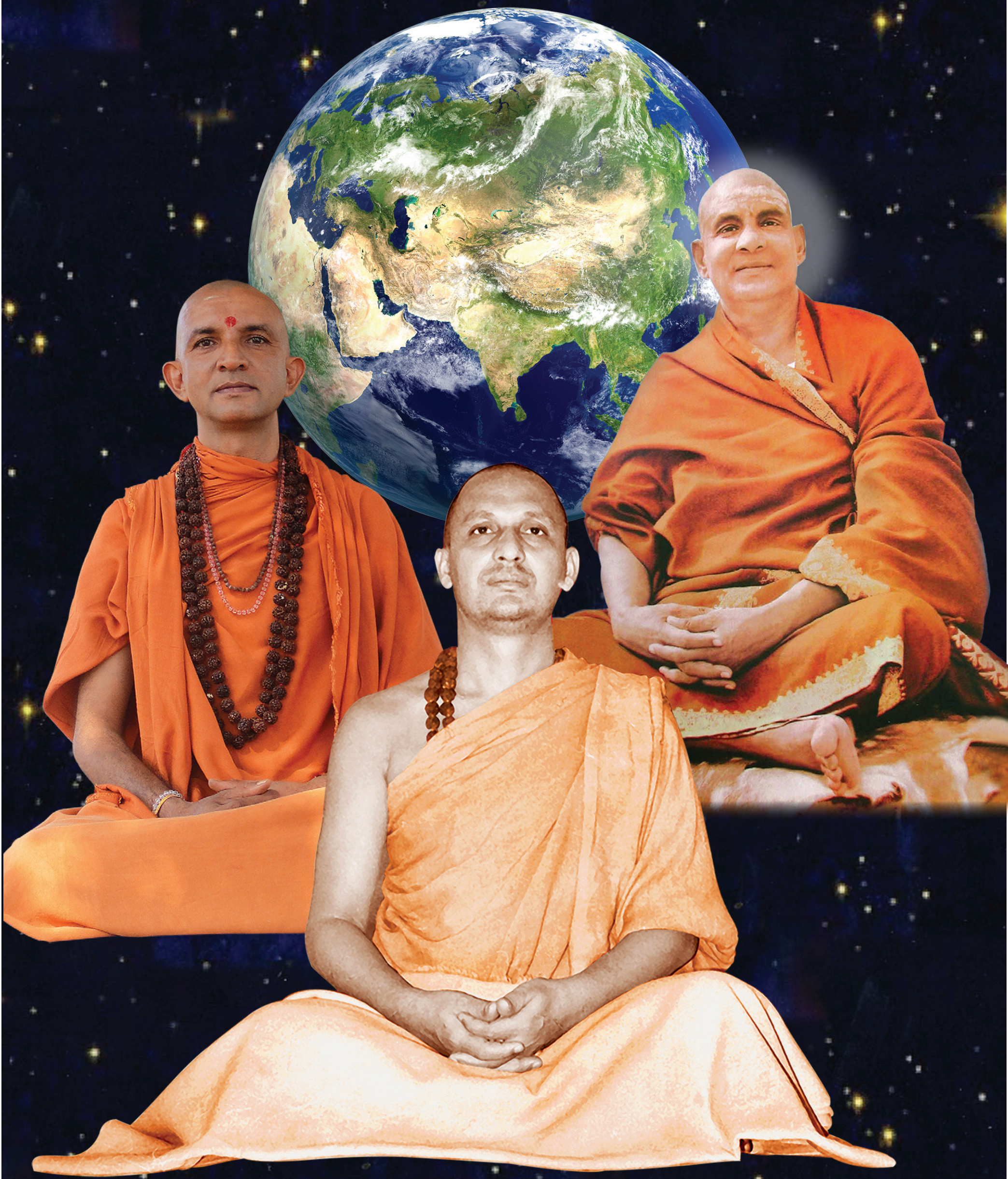

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

**सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

**योगविद्या** मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

© Bihar School of Yoga 2026

**उपयोगी संसाधन**

*वेबसाइट* :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

*एप्प* : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

*कुल पृष्ठ संख्या* : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

*कवर* : बिहार योग गुरु परम्परा

*प्लेट* : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के सत्संग, 2025

## आध्यात्मिक मार्गदर्शन

### परम धर्म

दूसरों की भलाई करना, यह परम धर्म है। कर्तृत्व के अभिमान तथा कर्मफल की आशा से अपने को मुक्त रखते हुए प्रति सप्ताह कुछ घण्टे तक निष्काम सेवा कीजिए। अपने सांसारिक कर्त्तव्यों को भी इसी प्रकार कीजिए। कर्म पूजा है, इस भावना के साथ अपने कर्म भगवान को समर्पित कर दीजिए।

अपनी आय का कुछ अंश दान कीजिए। अपनी वस्तुओं में दूसरों को भी सहभागी बनाइए। संसार के सभी प्राणियों को अपना कुटुम्बी मानिए। स्वार्थ-वृत्ति का त्याग कीजिए।

*– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती*

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित

**स्वामित्व** – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

# योगविद्या

वर्ष 15 अंक 1 जनवरी 2026
(प्रकाशन का 64वाँ वर्ष)

## विषय सूची

2 शिष्य के उद्गार
3 मानसिक संतुलन का अर्जन
7 भावनाओं का शमन और आत्म-रूपान्तरण
14 अनुशासन विद्या
23 योगविद्या पत्रिका का अनुभव
25 योग में शुद्धि की प्रक्रिया
29 श्रद्धा और विश्वास
32 संस्कार – आध्यात्मिक चेतना का आधार
43 कल्पतरु की छाँव में

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

# शिष्य के उद्गार

मुझे सदा और सर्वदा अपने गुरुदेव का जो चिरभिलषित प्रसाद – आशीर्वाद और स्नेह के रूप में, नवजीवन और ज्ञान के रूप में प्राप्त होता आया है, वाणी-विलास के परे है। श्री गुरुदेव की आन्तरिक प्रेरणा आज सजीव हुई है। मैं उनके ऋण से उऋण तभी हो सकता हूँ जब मैं उनके उपदेश, उनका सन्देश जन-जन के हृदय में भर दूँ और स्वयं इस दारुण जगजीवन पथ पर उनके चरणारविन्द की विभूति के सौरभ में ओतप्रोत हो, उनकी तपोल्लसित-स्निग्ध-चन्द्रच्छाया में, महानिर्वाण, परमधाम तथा सद्गति की ओर चिरन्तन-युगों के साथ चलता रहूँ और अविश्रान्तगत्या चलता रहूँ – शाश्वत सत्य और अविस्मरणीय-परमार्थ के अखिल-सौन्दर्यसज्जित महामहनीय परात्पर की ओर।

*– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती*

# मानसिक संतुलन का अर्जन

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

मानसिक संतुलन एक उन्नत योगी का प्रमुख गुण एवं लक्षण है। जो व्यक्ति हर समय मानसिक संतुलन बनाए रख सकता है, वह वास्तव में एक स्थिर और सुखी व्यक्ति है, एक सच्चा योगी है।

मानसिक संतुलन को योग में समाधान कहा जाता है। समाधान का तात्पर्य पूर्ण लगन तथा एकाग्रता से है। मन को बाहरी आयाम से खींचकर आत्मा से जोड़ा जाता है, उसमें स्वयं को स्थापित किया जाता है। आदि शंकराचार्य ने 'आत्मा-अनात्मा विवेक' में कहा है – 'जब मन श्रवण करने में व्यस्त है और श्रवण के समय सांसारिक विषय-वस्तुओं का सम्पर्क होने पर क्षणभर के लिए उनकी ओर आकृष्ट होता है, पर फिर उन्हें व्यर्थ पाकर अपने अभ्यास पर पुनः लौट आता है, तब यही लौटना समाधान है।'

संतुलित मन वाला व्यक्ति दुःख के समय विचलित नहीं होता और सुख में सम रहता है। उसकी मानसिक अवस्था स्थिर होती है। वह आसक्तियों से दूर रहता है, उसे न किसी चीज से राग होता है और न ही किसी चीज से द्वेष। उसके अंदर मानसिक दृढ़ता और आतंरिक शांति बनी रहती है। कई साधक एकांत में रहते हुए बाहरी विक्षेपों के अभाव में मानसिक संतुलन और शांति बनाये रखते हैं, लेकिन जब ऐसे साधक किसी शहर में आकर लोगों से मिलते-जुलते हैं, तब उनके मन में बहुत उथल-पुथल होती है। वे लोग भीड़वाली जगह पर ध्यान की साधना नहीं कर पाते। यह एक कमजोरी है। यह समाधान में सफलता का लक्षण नहीं है। ऐसे साधकों में मानसिक संतुलन नहीं होता, समता और स्थिरता नहीं होती। वही साधक सफल है जो हिमालय की एकांत गुफा और रणभूमि में समान रूप से अपना मानसिक संतुलन बनाए रख सके। वही समाधान में पूर्णतया स्थिर है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा भी है –

*योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय।*
*सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥2.48॥*

'अर्जुन, सभी कर्मों को करते हुए परमात्मा के साथ एकाकार हो, सभी बंधनों से मुक्त होकर, सफलता और असफलता में समभाव रखना।' यह

समाधान है। इस सम्बन्ध में श्रीमद्भगवद्गीता में यह श्लोक भी देखने को मिलता है –

*रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।*
*आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥2.64॥*

'एक संयमित आत्मा सभी इन्द्रिय-विषयों में विचरते हुए भी इन्द्रियों के राग-द्वेष से ऊपर उठकर स्वयं पर विजय प्राप्त कर शाश्वत शांति को प्राप्त होती है।' इसे भी समाधान कहते हैं।

## मानसिक संतुलन प्राप्त करने के लिए कुछ निर्देश

*प्राणायाम का अभ्यास* – प्राणायाम मन में चल रहे विचारों की गति को संतुलित करता है और मन की अशुद्धता को दूर करता है। मन पर काबू पाने के लिए आंतरिक कुम्भक बहुत लाभदायक है। आपको नियमित रूप से इसका अभ्यास करना होगा, तभी मन एकचित्त होगा।

*शम और दम का अभ्यास* – शम और दम के अभ्यास से उपरति आती है अर्थात् मन शांत होता है। वासनाओं को हटाने से मन शांत होता है। यही शम

है। शम षट्सम्पत्ति के अन्तर्गत आने वाला पहला सद्गुण है, जिसमें सोच-विचार करके महत्त्वाकांक्षाओं एवं वासनाओं को त्यागा जाता है। यदि महत्त्वाकांक्षाएँ उठती भी हैं तो उन्हें आगे बढ़ने न दिया जाये, यही शम का अभ्यास है। मन को हृदय में केन्द्रित रखने की साधना ही शम है। जप, ध्यान, विचार आदि के माध्यम से महत्त्वाकांक्षाओं को दूर करने में सफलता प्राप्त होती है।

इन्द्रियों तथा उनकी बाहरी गतिविधियों पर संयम ही दम का अभ्यास है। यदि आप आम खाने की इच्छा को त्यागते हो तो वह शम है और जब अपने पैरों को आम खरीदने के लिए जाने से रोकते हो, अपनी आखों को आम देखने से रोकते हो और अपनी जीभ को आम का स्वाद चखने से रोकते हो तो वह दम है।

शम आंतरिक संयम है और इन्द्रियों को रोकना दम है। हालाँकि शम के अभ्यास से दम का अभ्यास अपने आप होता है क्योंकि इन्द्रियाँ मन की मदद बिना काम नहीं करतीं, फिर भी दम का स्वतंत्र अभ्यास जरूरी है। दम और शम का अभ्यास साथ-साथ होना चाहिए। महत्त्वाकांक्षाएँ और वासनाएँ प्रबल शत्रु हैं। उनपर अंदर और बाहर, दोनों ओर से आक्रमण करने पर ही मन पर नियंत्रण हो सकेगा।

*हर परिस्थिति को यथावत् स्वीकार करें* – शिकायत करने के बजाय परिस्थितियों को स्वीकार करें। इस तरह के विचार को अपनाने से आपको मानसिक बल मिलेगा और मन समत्व की स्थिति में रहेगा। चिड़चिड़ापन खत्म होगा और सहनशीलता विकिसत होगी।

यदि आपको कोलाहल भरे वातावरण में रहना पड़ जाए तो उसकी शिकायत न करें बल्कि उसका लाभ उठाएँ। बाहरी खलबली को धारणा शक्ति का विकास करने में प्रयोग कर सकते हैं। आपके आस-पास चाहे जो कोई भी हो या जो कुछ भी हो रहा हो, आप बिना विक्षिप्त हुए अपने कार्य करने की शक्ति को विकसित करें। यह शक्ति अभ्यास से शनैः शनैः विकसित होती है और जीवन की विषम परिस्थितियों में यह बहुत कारगर सिद्ध होती है। विभिन्न परिस्थितियों में काम करने से अंतःकरण का विकास होता है और मानसिक संतुलन भी बनता है।

*अहंकार से ऊपर उठो* – न सिर्फ विचारों और वासनाओं से ऊपर उठो, बल्कि अपनी अहं वृत्ति से भी, जो हमें अपने शरीर से जोड़ती है। तभी आप अपने वास्तविक स्वरूप में स्थापित हो सकेंगे।

बुद्धि पर संयम और अहं के विनाश से मन पर संयम होता है। ईसा मसीह ने कहा भी है, 'अपने आप को खाली कर दो, तब तुम्हारा सीमित अहं परम तत्त्व से भर जायेगा' अर्थात् अपने अहंकार का नाश करोगे तो देवत्व से भर जाओगे। स्वयं को खाली करना ही अष्टांग योग का 'चित्तवृत्ति-निरोध' है जिसमें सभी प्रकार की मानसिक वृत्तियों को काबू में किया जाता है। मन को खाली रखने की प्रक्रिया एक अनुशासन है। निरंतर अभ्यास और कड़ी मेहनत से ही सफलता मिलती है। अनवरत अभ्यास और अध्यवसाय से आप अध्यात्म की दिव्य ऊँचाइयों पर जा सकते हो।

जब मन अहंकार-जनित विचारों से रिक्त हो जाता है और सद्गुरु से दीक्षा ग्रहण करने तथा वेदों के महत्त्व को जानने के बाद उसे आत्मा पर केन्द्रित किया जाता है, तब वह सभी प्रकार की वेदनाओं से मुक्त हो जाता है और सदैव परमात्मा में विचरता है।

*अपनी क्षमता के अनुरूप अभ्यास करें* – मानसिक संतुलन पाने के लिए आपको अपनी क्षमता के अनुसार मनोबल बनाते हुए कार्य करना होगा, अन्यथा आपको निराशा ही हाथ लगेगी। यह बहुत महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। अपनी क्षमता के अनुसार हर दिन का एक कार्यक्रम बनाएँ और देखें कि आप उसे हर हाल में पूरा कर रहे हैं या नहीं। कार्यक्रम में कुछ ही चीजें शामिल करें। यदि बहुत सारी चीजें होंगी जो एक दिन में नहीं हो सकतीं, तो आपकी संकल्प-शक्ति और प्रेरणा धीरे-धीरे खत्म हो जायेगी। आपका उत्साह क्षीण हो जाएगा, आपकी शक्ति बिखर जाएगी, आपका दिमाग थक जायेगा। इसलिए आप दिन में जो कुछ भी करने का संकल्प लें, उसे पूरा जरूर करें।

हो सकता है कि आप पचास बार अपने प्रयासों में विफल रहें, परन्तु इक्यावनवें प्रयास में आपका आत्मबल मजबूत होगा। धीरे-धीरे आप मानसिक संतुलन प्राप्त करेंगे। विफलता से निराश नहीं होना है, अपना पूरा जोर लगाते जाना है। अपनी गलतियों और त्रुटियों को देखें और उनका निर्मूलन कर दुबारा कोशिश करें। गलतियों को सिर्फ देखने से कुछ नहीं होगा, उनके मूल कारणों को दूर करने से ही सफलता मिलेगी। राजा ब्रूस और मकड़ी की कहानी तो आप ने सुनी होगी। ब्रूस ने बारम्बार जाल बुनती मकड़ी से सबक सिखा। वह युद्ध में सात बार हारा, परन्तु आठवीं बार जीत उसी की हुई।

# भावनाओं का शमन और आत्म-रूपान्तरण

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

भक्तियोग आपकी भावनाओं को परखने और संतुलित करने का एक तरीका है। अलग-अलग लोग भिन्न-भिन्न तरीकों से भक्तियोग का अभ्यास करते हैं। अंतर्मुखी और अतीन्द्रिय प्रकृति वाला व्यक्ति मंत्र जप और ध्यान के रूप में भक्तियोग का अभ्यास कर सकता है। मंत्र का उपयोग करके ऐसे लोग ध्यान की गहरी अवस्था में चले जाते हैं और भावनाओं को शुद्ध करते हैं। एक भावना प्रधान व्यक्ति भक्तियोग का अभ्यास धार्मिक दृष्टिकोण से करेगा – उसका एक छोटा-सा पूजा स्थान होगा, वहाँ प्रार्थना करेगा, फूल चढ़ायेगा, धूप-दीप दिखायेगा, अपने इष्ट के सामने भजन-कीर्तन गायेगा, नृत्य करेगा, और उनके प्रति एक भावना विकसित करेगा, चाहे वह मूर्त हो या अमूर्त। एक भावनाप्रधान व्यक्ति भक्ति को श्रद्धा और प्रेम के रूप में जीयेगा जबकि एक अंतर्मुखी, प्रज्ञाप्रधान व्यक्ति भक्ति को ध्यान के रूप में जीयेगा। एक कर्मठ व्यक्ति भक्ति का दूसरों की सेवा के रूप में अभ्यास करेगा और एक

बुद्धिप्रधान व्यक्ति भक्ति को बकवास कहेगा। वह कहेगा कि यह कुछ भी नहीं है, इससे कुछ नहीं होता।

ये चार व्यक्तित्व एक ही सिद्धान्त को चार अलग-अलग चश्मों से देखेंगे। आप जो भी चश्मा पहनें, महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आप अपने मन और अहंकार की गुणवत्ता को सुधारने के लिए क्या कर सकते हैं।

## योग से सुधरना बनाम योग को सीखना

अहंकार का सुधार विनम्रता से होता है, घमण्ड और कठोरता से नहीं। अगर आपको लगता है कि आपके जीवन में अहंकार बढ़ रहा है, आपके व्यवहार में अधिक कठोरता और टकराव दिखाई दे रहे हैं, तो इसका मतलब है कि आप नकारात्मक, अंधकारमय रास्ते पर जा रहे हैं। दूसरी ओर, अगर आपको लगता है कि अपने व्यवहार में आप अधिक विनम्र होते जा रहे हैं तो आप आध्यात्मिक मार्ग पर चल रहे हैं। यह आश्रम के अन्तेवासियों पर भी लागू होता है।

अगर आप अपने सहकर्मियों, दोस्तों, अन्य अन्तेवासियों और अतिथियों के साथ झगड़ालू व्यवहार करते हैं, तो आप गलत रास्ते पर जा रहे हैं। अगर आप विनम्रता अभिव्यक्त कर सकते हैं और दूसरे लोगों को विनम्रता के साथ अपनी बात समझा सकते हैं, तो आप सही रास्ते पर जा रहे हैं। बेशक, इसे पहचानना प्राय: असंभव है; कोई भी यह जानना नहीं चाहता कि वह गलत है। कोई भी यह नहीं सुनना चाहता कि वह गलत है, इसलिए किसी के जीवन में 'सुधार योग' नहीं होता, बल्कि योग का शुष्क प्रशिक्षण ही होता है।

सुधार योग क्या है? शिक्षक विद्यार्थी से कहता है, 'वहाँ एक लाल क्रॉस है, तुम्हें उस क्षेत्र में ज्यादा मेहनत करनी होगी।' लेकिन आज विद्यार्थियों की मानसिकता ऐसी है कि वे अपनी कॉपी में लाल क्रॉस नहीं देखना चाहते। अगर वे लाल क्रॉस देखते हैं, तो शिक्षक दोषी है, वे नहीं। यह तामसिक अहंकार है।

## रंगीन से रंगहीन होना

राजयोग चित्त और उसके संस्कारों के प्रबंधन से संबंध रखता है। यह आपको तार्किक बुद्धि की क्षमता का उपयोग करके द्रष्टा बनने के लिए प्रेरित करता है। द्रष्टा के रूप में आप खुद को अपने मानसिक संघर्षों और विक्षेपों से निपटता देखते हैं। भक्तियोग में आप भावनाओं को संतुलित करते हैं।

श्री स्वामीजी भावनाओं के बारे में एक सरल दृष्टान्त देते हैं। स्फटिक एक पारदर्शी पत्थर है, इसका अपना कोई रंग नहीं होता। यदि आप स्फटिक को किसी विशेष रंग पर रखते हैं, चाहे वह हरा, काला, पीला, नीला, गुलाबी, बैंगनी हो, वह रंग स्फटिक में प्रतिबिंबित दिखाई देगा। जिस क्षण आप स्फटिक के पत्थर को रंग से हटाते हैं, वह फिर से पारदर्शी हो जाता है। स्फटिक का अपना कोई रंग नहीं है, यह केवल उस रंग को प्रतिबिंबित करता है जिसपर इसे रखा जाता है। यही बात मानव स्वभाव के सूक्ष्म आयाम पर भी लागू होती है, चाहे वह मन हो या भावना। मन और भावनाओं का कोई रंग नहीं होता। रंग तब अनुभव किए जाते हैं जब वे किसी घटना, परिस्थिति या व्यक्ति के संपर्क में आते हैं। संपर्क के रंग मन और भावनाओं में प्रतिबिंबित होते हैं।

अगर आप अपने सामने लाखों रुपयों से भरा झोला देखते हैं, तो आपके मन और भावनाओं का रंग क्या होगा? लोभ का। इससे प्रेरित होकर आप सोच सकते हैं, 'ओह, आसपास कोई भी नहीं है, मैं इसे ले सकता हूँ।' जब आप अपने विरोधी को भीड़ में दूर से भी देखते हैं, तो तुरंत मन और भावनाएँ आक्रामकता और क्रोध का एक अलग रंग ले लेती हैं। पाँच मिनट पहले आपका मन उस रंग से मुक्त था, पर अब नहीं है। कुछ देखने से मन और भावनाओं का एक विशेष व्यवहार सामने आता है। प्रेम, ईर्ष्या, घृणा, करुणा, दया – ये सभी भावनाएँ और संबंधित विचार तभी आते हैं जब किसी बाहरी विषय-वस्तु के साथ संपर्क होता है।

विचारों और भावनाओं के रूप में आप जो भी अनुभव कर रहे हैं, वे इंद्रियों के उनके विषयों के साथ संपर्क के कारण हैं। आपके अस्तित्व की प्राकृतिक अवस्था रंगहीन होती है। इसे ही स्वामी शिवानंद जी 'प्रशांत आत्मा' कहते थे। शांति वह अवस्था है जहाँ आप रंगहीन हो जाते हैं, जहाँ आप मन या भावनाओं से अप्रभावित रहते हैं। मन की वह शांतिपूर्ण अवस्था प्राप्त करना ही हमारा लक्ष्य है।

## अवलोकन का योग और अनुभव का योग

राजयोग एक ऐसी विधि है जिसमें सीढ़ी के पायदानों का उपयोग करके कदम-दर-कदम छत तक चढ़ा जाता है। जिस तरह आपको सीढ़ी चढ़ते समय ज्यादा सावधानी बरतनी होती है और देखना होता है कि आप अपना पैर कहाँ रख रहे हैं, उसी तरह एक मानसिक अवस्था से दूसरी मानसिक अवस्था में जाते

समय खुद को देखने में बहुत सावधानी बरतनी होती है। यहीं पर द्रष्टा की भूमिका आती है – 'मैं देख रहा हूँ, मैं साक्षी हूँ'।

'मैं साक्षी हूँ' – यह भाव आपको कर्म से अलग कर देता है। अब आप कर्ता नहीं रह जाते, बल्कि कर्म के साक्षी बन जाते हैं। मंच पर एक अभिनेता अपनी भूमिका को बेहतरीन तरीके से निभाने के लिए हर संभव प्रयास करता है, लेकिन नाटक खत्म हो जाने के बाद, वह अभिनय को अपने घर नहीं ले जाता। अभिनय का स्थान मंच था, घर या सड़क नहीं। आपको भी इस संसार रूपी रंगमंच पर सजगता के साथ अभिनय करना होगा। सजग होने पर ही आप अपने कर्मों को नियंत्रित और निर्देशित कर सकते हैं।

सजगता हमेशा ज्ञान लाती है। ज्ञान कौशल और अनुभव लाता है। इस तरह, बौद्धिक अनुभव और व्यावहारिक अनुभव, दोनों होंगे। यदि आप सजगता और ज्ञान के साथ अपने द्रष्टा स्वभाव को बनाए रख सकते हैं, तो

समाधि की स्थिति में जाना संभव है। मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार के माध्यम से समाधि तक पहुँचना संभव है, और यही महर्षि पतंजलि ने कहा है।

भक्तियोग एक अलग प्रक्रिया है, फिर भी यह राजयोग की प्रक्रिया में सहायक है। जैसा कि मैंने कहा, एक भावनात्मक व्यक्तित्व भक्ति को पूजा-आराधना और धर्म के अंग के रूप में देखेगा। एक अंतर्मुखी, संवेदनशील व्यक्तित्व ध्यान के माध्यम से भक्ति का उपयोग करेगा। एक कर्मप्रधान व्यक्तित्व भक्ति को सभी का भला करने के रूप में देखेगा। भक्ति की सिर्फ एक परिभाषा नहीं है।

भक्ति को *'भज् सेवायाम्'* के रूप में परिभाषित किया गया है – 'सेवा ही भक्ति है।' इसलिए सेवा करने वाला भलामानस भी एक भक्त है। जब आप दूसरों के लिए अच्छा करते हैं, तो यह सिर्फ एक अच्छा काम नहीं है, यह भी भक्ति है। जब आप किसी भूखे को भोजन खिलाते हैं तो वह भी भक्ति है। जब आप प्यासे को पानी पिलाते हैं, वह भी भक्ति है।

दिव्यता के साथ संबंध को समझने के अलग-अलग तरीके हैं। धार्मिक दृष्टिकोण से भक्ति वह संबंध हो सकता है जो किसी व्यक्ति का ईश्वर के साथ होता है; ईसाइयों के लिए यह ईसाई-ईश्वर है, हिंदुओं के लिए यह हिंदू-ईश्वर है, मुसलमानों के लिए यह इस्लामी-ईश्वर है, और सभी के लिए यह उनका अपना ईश्वर है। भक्ति की यह अवधारणा केवल धार्मिक और सीमित है।

भक्ति मात्र भावनात्मक संबंध नहीं, बल्कि भावनाओं की पराकाष्ठा है, उनका पारलौकिक होना है। संबंध एक छोटी-सी चीज है, पारलौकिक पराकाष्ठा बहुत बड़ी चीज है। सीढ़ी में सभी छोटे-छोटे पायदान मुख्य खंभों से जुड़े होते हैं, फिर भी पायदान उतने महत्त्वपूर्ण नहीं होते जितने खंभे होते हैं क्योंकि उन्हें सारा भार वहन करना होता है।

भक्तियोग राजयोग का सम्पूरक है क्योंकि यह आपको अपनी भावनाओं को परिष्कृत करने और मन की स्पष्ट अवस्था तक पहुँचने की क्षमता देता है। बदलते रंगों के साथ जुड़ने के बजाय, आप मन और अहंकार की स्पष्ट प्रकृति के साथ जुड़ना सीखते हैं। आप सात्त्विक अहंकार के साथ जुड़ते हैं और यही भावनाओं का पारलौकिक होना है।

राजयोग साक्षी बनने का योग है और भक्तियोग अनुभव करने का। अनुभव के बिना साक्षी भाव अधूरा है और अनुभव को जाने-समझे बिना वह भी अधूरा है। इसलिए दोनों का ध्यान रखना चाहिए।

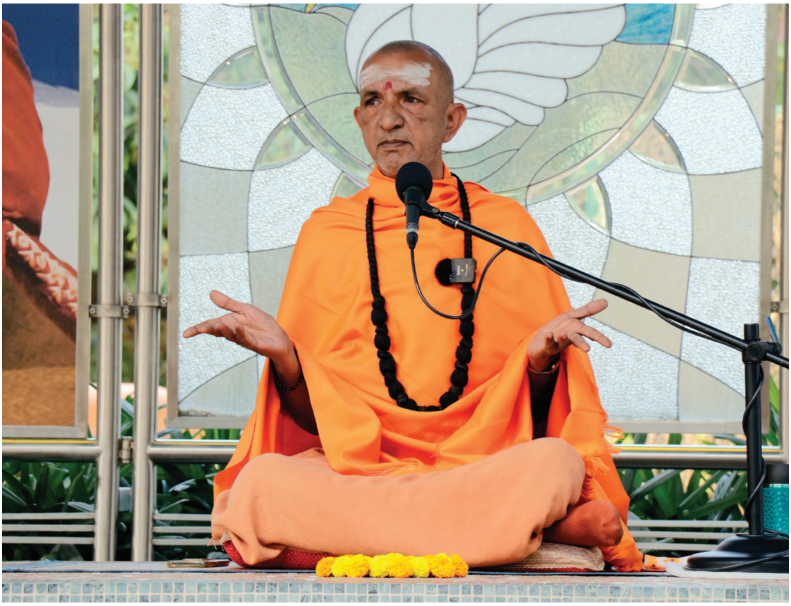

## रूपान्तरण का प्रारम्भ

यह सब अच्छी आदतें विकसित करने के प्रयास से शुरू होता है। मुश्किल यह है कि लोग अच्छी आदतें विकसित करने या बुरी आदतों को बदलने में असमर्थ हैं। यहीं पर चुनौती है, आध्यात्मिक जीवन में भी। आप ज्ञानयोग, राजयोग, भक्तियोग, क्रियायोग, कुंडलिनीयोग, किसी भी योग पर बात कर सकते हैं, लेकिन अगर आप अपनी आदतें बदलने में असमर्थ हैं, तो कोई भी योग प्रभावी नहीं होगा।

हमें अपनी आदतें बदलनी होंगी। शरीर की आदतें बदलने के लिए शरीर की अशुद्धियों को बाहर निकालना होगा, तब वह हल्का और ऊर्जावान् हो सकेगा। उसी तरह, मन की नकारात्मकता को बदलना होगा, उसे सकारात्मक बनाना होगा। सीमित भावनाओं को बदलना होगा, उन्हें अधिक विस्तृत और व्यापक बनाना होगा। आत्मा के प्रकाश को ढकने वाले पर्दों को हटाना होगा। वे सभी पुरानी आदतों के कारण हैं।

कसौटी यह नहीं कि आप कितना अभ्यास करते हैं, या आप सूर्य नमस्कार के सौ चक्र कर सकते हैं या नहीं। सबसे बड़ी चुनौती है अपनी सजगता को बदलना और उसे नकारात्मकता के बजाय सकारात्मकता तथा

अच्छाई से जोड़ना। जब सजगता किसी विशेष तरह का व्यवहार करने से जुड़ी होती है, तो उसे आदत कहते हैं। शराब पीना, धूम्रपान करना, सोना, खाना-पीना, निंदा करना, प्रशंसा करना – ये सब आदतें बन सकती हैं। आप जिस चीज से भी जुड़ते हैं, वह आदत बन सकती है, क्योंकि वह जुड़ाव आपको प्रभावित कर देता है।

इस प्रकार, राजयोग और भक्तियोग में आप जो अपने अंदर विकसित करने की कोशिश कर रहे हैं, उससे कहीं ज्यादा आपको यह जानना होगा कि आप बदलाव और रूपांतरण की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। आपको स्वेच्छापूर्वक प्रतिबंधात्मक और नकारात्मक चीजों को सकारात्मक में बदलने का प्रयास करना होगा। पुरानी आदतों को बदलना होगा। ऐसा नहीं कहना चाहिए कि 'ओह, मुझे अपनी आदतें बदलने की जरूरत नहीं है, मैं तो हर दिन ध्यान करता हूँ।' यह एक अच्छा जवाब नहीं है। राजयोग को सिर्फ एक अभ्यास के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए जो आपको प्रत्याहार से समाधि तक ले जाता है, बल्कि एक ऐसे उपकरण के रूप में देखा जाना चाहिए जिसके माध्यम से आप अपनी वर्तमान परिस्थितियों को बदल सकते हैं और अपने जीवन के प्रति एक बेहतर दृष्टिकोण अपना सकते हैं।

हर योग का यही उद्देश्य है – बदलाव लाने के लिए सक्षम करना। सिर्फ अभ्यास करना पर्याप्त नहीं है। बेहतर बनने के लिए बदलाव लायें, अपने अंदर की सुंदरता से जुड़ने के लिए रूपान्तरण करें। कामनाओं के बजाय ऐसी सकारात्मक आकांक्षाओं से जुड़ने के लिए परिवर्तन लायें, जो आपके अंदर से बेहतर गुणों को बाहर ला सकती हैं। इसलिए, अवलोकन का योग, राजयोग, और अनुभव का योग, भक्तियोग, इन दोनों को एक साथ आना चाहिए ताकि आदतों को बदला जा सके। केवल किसी एक का अभ्यास करने से आप बहुत आगे नहीं जा पाएँगे।

नियमित रूप से थोड़ा अंतर्मौन और थोड़ा अंतर्दर्शन का अभ्यास करें, रात को सोने से पहले थोड़ा मंत्र जप या लिखित जप करें और जब भी संभव हो, जमकर कीर्तन करें। यह राजयोग और भक्तियोग का एक अच्छा संयोजन है, अभ्यास का एक पूरा पैकेज है। एक महीने तक प्रयास करें और अपने जीवन में आये गुणात्मक परिवर्तन देखें। फिर आप दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

*– 15 दिसंबर 2017, गंगा दर्शन*

# अनुशासन विद्या

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

मनुष्य के जीवन में सबसे पहली चीज उसका शरीर है, जो रथ के समान है और इसका चालक मन है। इस चालक मन को हम जब तक नियंत्रित नहीं करेंगे, तब तक यह शरीर रूपी रथ ठीक तरह से नहीं चलेगा। हम मुंगेर से यहाँ कार में आये हैं। सालभर हम कार से सफर करते हैं। हमारा ड्राइवर रात-दिन, चौबीस घण्टे गाड़ी चलाता है। हमारी गाड़ी मुंगेर से बम्बई तक निरन्तर अबाध गति से चलती है, परन्तु उसमें कोई खराबी दृष्टिगोचर नहीं होती, क्यों? गाड़ी की हालत ठीक होनी चाहिए और उसका चालक सतर्क एवं सजग होना चाहिए, तब तो गाड़ी चलेगी, नहीं तो गाड़ी अबाध गति से नहीं चल सकती।

रथ का सारथी ही सब कुछ होता है। जिस रथ का सारथी इन्द्रियों का निग्रह नहीं कर सकता, जिस रथ के सारथी को इस रथ के नियम, धर्म और अनुशासन नहीं मालूम हैं, उसके तन-मन, दोनों बीमार रहेंगे और निश्चित रूप से वह दुर्घटनाग्रस्त होगा। ऐसा केवल मैं नहीं बोलता, शास्त्रों में भी लिखा है।

योग कोई जादू नहीं है, ध्यान अपने जीवन के रहस्यों को जानने की विद्या नहीं है, आसन कोई व्यायाम नहीं है, और न ही योगविद्या कोई क्रिया है। यह एक अनुशासन विद्या है। यह स्वामी सत्यानन्द की परिभाषा नहीं है। यह विशिष्ट ग्रंथों की परिभाषा है। राजयोग का पहला सूत्र शुरू होता है – अथ योगानुशासनम् से, अथ योगस्य व्याख्यानम् से नहीं।

हर काम को करने का एक स्थान होता है, हर अंग का नाम होता है, हर क्रिया की एक सीमा होती है। उसी प्रकार शरीर के नियमों का ज्ञान प्राप्त करके उन नियमों के अनुसार शरीर को चलाना, मन के नियमों का ज्ञान प्राप्त करके उन नियमों के अनुसार सोचना-विचारना, व्यवहार करना, भावना करना 'अनुशासन' कहलाता है। अनुशासन का मतलब एक पद्धति नहीं। अनुशासन का मतलब पागलपन नहीं। अनुशासन का मतलब प्रतिभा नहीं। अनुशासन का मतलब जोर-जबरदस्ती भी नहीं। अनुशासन का मतलब है, जैसा नियम है, वैसे ही उसका पालन करना। जैसे पानी है, पानी को तुम अपने पॉकेट में ले जाना चाहो, तो जायेगा क्या? हाँ, पागल लोग पानी को अपने पॉकेट में

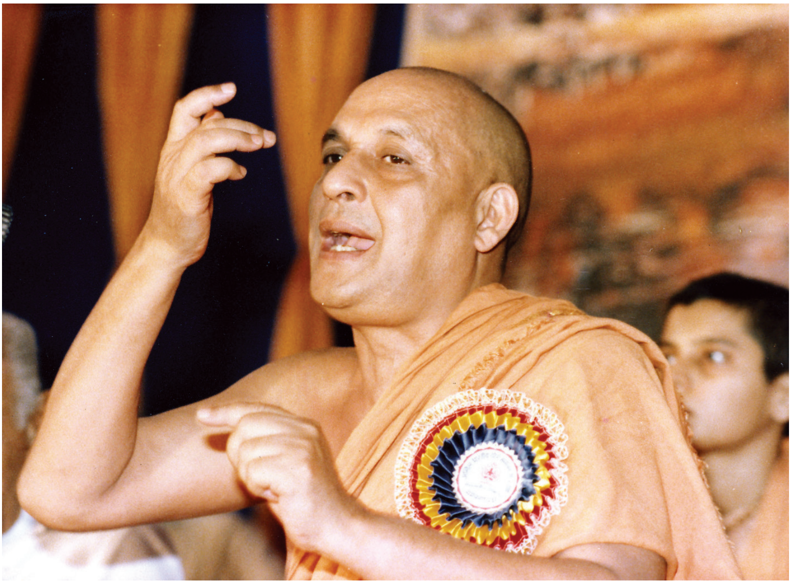

ले जाना चाहेंगे, क्यों? इसलिए कि उनको पानी के नियम का ज्ञान नहीं है। पानी तरल पदार्थ है, तरल पदार्थ का एक ठोस आधार होना चाहिए। यह मैंने उदाहरण दिया। इसी प्रकार अनुशासन है, इस एक शब्द से आज दुनिया घबराती है। क्यों घबराती है? इसलिए कि लोग अनुशासन का मतलब बतलाते हैं पाबन्दी, पर ऐसा नहीं है। अनुशासन का नाम है योग।

मन को पहले अनुशासित करना होगा। क्या आप लोगों के यहाँ मन को शिक्षा देने वाला कोई स्कूल है? आप लोगों के यहाँ मनुष्य की भावनाओं को प्रशिक्षित करने वाला कोई विद्यालय है? नहीं। हम लोगों के यहाँ मनुष्य की अन्तरात्मा को प्रशिक्षित करने वाला कोई प्रशिक्षण स्थल नहीं है, इसलिए लोग दुःखी हैं, शोक-संतप्त हैं, अनुशासनहीन हैं और अपराध करते हैं। हम लोग अपने यहाँ बच्चों को थोड़ी-बहुत बौद्धिक शिक्षा देते हैं और बच्चे इसे मजबूरी में पढ़ते हैं। ये बच्चे बी.ए.–एम.ए. पास करना चाहते हैं, क्योंकि देखते हैं कि ऐसा नहीं करने से प्रमाणपत्र नहीं मिलेगा, नौकरी नहीं मिलेगी। पर यदि आपके यहाँ मनुष्य की भावनाओं, उसके अन्तःकरण और मन को प्रशिक्षित करने के लिए विद्यालय हो, तो मुझे लगता है कि बच्चे स्वयं वहाँ जाकर सीखना और सुनना पसंद करेंगे।

## मन का प्रशिक्षण

योग मन को शिक्षित करने की एक प्रणाली है। इसीलिए हम लोगों ने तीन दिनों के इस योग सम्मेलन का आयोजन किया है। बच्चों के लिए एक कहानी कहता हूँ। मैं मन के प्रशिक्षण की जो बात कह रहा हूँ, वह इस कहानी से स्पष्ट हो जाएगी।

एक राजा था, उसके पास चार घोड़े थे और चारों घोड़े उद्दण्ड थे, जैसे तुम लोग हो। कोई उन घोड़ों को अनुशासित नहीं कर पाता था, उनका उपयोग नहीं कर पाता था, उनकी पीठ पर बैठ नहीं पाता था, उनको हाथ भी नहीं लगा सकता था। राजा ने ऐलान किया कि जो उन घोड़ों को पालतू बना देगा, उपयोगी बना देगा, अनुशासित कर देगा, हम उन्हें ईनाम देंगे। ईनाम क्या था? आधा राज-पाट और बेटी से विवाह। अब सब लोगों की जिज्ञासा बढ़ी। सोचने लगे कि बड़ा अच्छा है, आधा राज्य और इकलौती बेटी भी ईनाम में मिलेगी। बड़े-बड़े राजाओं और सेनापतियों के लड़के, सब गये। उन्होंने कहा कि हमलोग घोड़ों को वश में कर लेंगे। राजा ने कहा, जाओ। उनको अस्तबल में ले जाया गया। वे अन्दर गये, उन घोड़ों ने उनका ऐसा हाल किया कि वे सिर पर पैर रखकर भागे और कभी अस्तबल न जाने की कसम खा ली। इस प्रकार एक मुद्दत तक कोई उनको सीधा न कर सका और अनुशासन में न ला सका।

एक दिन की बात है, एक नवयुवक आया। वह बहुत फटेहाल, गरीब घर का था। उसने कहा, 'राजन्! सुना है आपके पास चार अनुशासनहीन, निरंकुश, किन्तु प्रबल घोड़े हैं। मैं उनको लेने आया हूँ। पहले एक घोड़ा दें, मैं उसको अनुशासित करूँगा।' उन्होंने कहा, 'ठीक है, दे दो।' एक घोड़ा दे दिया गया। नवयुवक उस घोड़े के साथ गया। एक साल बीत गया, वह वापस नहीं आया। लोगों ने सोचा कि नवयुवक तो गया, पर साथ ही घोड़ा भी चला गया। इस तरह देखते-देखते दो-तीन साल नहीं, बल्कि पूरे बारह वर्ष की अवधि बीत गयी। किन्तु वह नवयुवक नहीं आया। लोगों ने मान लिया कि अब वह नहीं आयेगा। तभी अचानक एक दिन लोगों ने देखा कि वह नवयुवक घोड़े पर बैठा हुआ चला आ रहा है। वह अन्दर आया। सब लोग आश्चर्य में पड़ गये।

राजा ने उससे पूछा कि तुम घोड़े को किस प्रकार अनुशासित कर पाये, हम लोगों को समझाओ। उसने कहा, 'जब घोड़ा अस्तबल से छूटा, तब वह भागता जा रहा था। जब वह रुकता था, मैं भी रुक जाता था। वह पानी पीता

था, तो मैं भी पानी पीता था। जब वह घास खाता था, तो मैं भी पेड़ पर चढ़कर फल-फूल खाता था और जब वह विश्राम करता था तो मैं भी विश्राम करता था। ऐसा करते-करते मैंने थोड़े दिनों में देखा कि घोड़ा और मैं एक-दूसरे के निकट आते जा रहे हैं। कुछ दिनों बाद हमारी यह दूरी भी समाप्त हो गयी और हम अच्छे मित्र बन गये। इस प्रकार आप देख ही रहे हैं कि मैं आज इस घोड़े के ऊपर बैठकर आया हूँ।'

ठीक ऐसा ही है यह मन रूपी घोड़ा। यह तुम्हारे पास ही रहेगा और इससे काम लेने वाले तुम ही हो। किन्तु यदि इस प्रबल अश्व की पीठ पर बैठना है और इसको अपने वश में करना है, तो सबसे पहले मन को अपना मित्र बनाओ। मन और अपने बीच जो दरार है, मन और अपने बीच जो भेद है, उसको मिटाओ। मन को हम पापी, दुष्ट और चोर कहते हैं। मन के लिए जितनी भी बुरी संज्ञायें हैं, हम उन सबका उपयोग करते हैं। बस, योग का यही सारांश है कि मनुष्य का मन उसका मित्र और शत्रु, दोनों है। जिसने मन को निकट कर लिया, मन उसका मित्र हो जाता है। जिसका मन वश में नहीं है, वही उसका शत्रु बन जाता है। मन को अनुशासन में लाने के लिए योग की क्रियायें की जाती हैं। इस देश के निवासियों को निश्चित रूप से अपने इतिहास के प्रति गौरव का अनुभव होना चाहिये। यह जाति विशेष है, जिसको मन को नियंत्रित करने की प्रणाली ज्ञात है।

पश्चिम को तो हमने देख लिया, आधुनिक सभ्यता को भी देख लिया और आगे भी देखेंगे। साम्यवादी सभ्यता को आपने देखा है और आगे भी देखोगे। किन्तु जिस सभ्यता के पास अनुशासन है, उस सभ्यता को देखा है कभी, उस संस्कृति को देखा है कभी? केवल सामाजिक और नागरिक व्यवस्था नहीं, बल्कि आंतरिक और भावनात्मक अनुशासन भी होना चाहिए। पश्चिम के देशों का नागरिक और सामाजिक अनुशासन उत्तम कोटि का है, इसमें संदेह नहीं, किन्तु उनके व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन नहीं है। इसलिए उन लोगों के यहाँ मानसिक और भावनात्मक दुर्घटनायें होती रहती हैं।

हम चाहते हैं कि इस देश के छोटे से बड़े, सभी मनुष्यों में अदम्य संकल्प शक्ति हो और वह अदम्य संकल्प शक्ति ऐसी हो, जैसे हमारी गाड़ी में मजबूत ब्रेक रहता है। हम हमेशा ब्रेक नहीं लगाते हैं। जहाँ तक सम्भव होता है, गाड़ी को नियंत्रण में लाने के लिए गियर बदलते हैं। मगर कभी-कभी ब्रेक लगाने की जरूरत पड़ती है। जब ब्रेक लगाने की जरूरत पड़े और उस समय तुम्हारा

ब्रेक खराब हो गया, तो क्या होगा? हरि: ॐ तत्सत्। उसी प्रकार मनुष्य के जीवन में हमेशा ब्रेक लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। किन्तु कभी-कभी जीवन में ऐसे अवसर आते हैं, जब हर लड़के, लड़की, बच्चे और बड़े आदमी को कठोर नियंत्रण की आवश्यकता होती है।

एक सामान्य उदाहरण है, घर में झगड़ा हो गया, हर घर में होता है। एक बार में बातों से स्थिति नियन्त्रण में नहीं आयी, तो लाठी की नौबत भी आ जाती है। यह घर-घर की बात है। बात बहुत छोटी होती है, सामान्य होती है, लेकिन अनुशासन की कमी के कारण पूरी तरह बिगड़ जाती है। हमारा केवल यही निवेदन है कि योग हमारे जीवन में छा जाये और ऐसा छा जाये कि दुनिया के सामने हम एक तकनीकी देश के रूप में भले न उभर सकें, एटम बम, अणु बम न बना सकें, तो भी ऐसे लोग पैदा कर सकें, ऐसे नागरिकों का निर्माण कर सकें, ऐसे समाज का निर्माण कर पायें, जिनके अन्दर भावनात्मक एवं मानसिक अनुशासन हो। यही योग का अंतिम लक्ष्य है।

## सुविधा और सुख

आप मुझसे पूछते हो, पश्चिम के लोग योग को क्यों ग्रहण कर रहे हैं? यहाँ के लोग समझते हैं कि उनके पास बहुत पैसे हैं और वे थक गये हैं। पर ऐसी बात नहीं है। लोगों का कहना है कि वे लोग बहुत भौतिक प्रगति कर चुके हैं, अब

योग में जाना चाहते हैं, यह बात भी गलत है। पश्चिम के लड़के-लड़कियाँ और बड़े लोग आज योग को इसलिये ग्रहण कर रहे हैं कि उनको यह बात समझ में आ रही है कि मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन में मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक अनुशासन की बहुत आवश्यकता है। कोई दवा या मनोविज्ञान इन आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता है, न उनको रोटी दे सकता है, न कपड़े। यह बात अब उनको समझ में आ गयी है कि आत्मानुशासन के बिना भोग की आशा किसी को नहीं करनी चाहिए। आखिर क्या भोग करोगे?

अगर कल किसी व्यक्ति के घर किसी की मृत्यु हो जाये, तो तुमको अथवा मुझको कोई खबर देगा? नहीं। क्यों? घर में कोई मर गया है, इस वजह से मन को चोट लगी, वह दुःखी हो गया, शोक-संतप्त हो गया। उसका मन, उसकी भावना, उसका व्यक्तित्व, सब उससे प्रभावित हो गये हैं। जो आदमी दुःखी है, वह सुख का भोग नहीं कर सकता है। इसलिए सारी पाश्चात्य संस्कृति, जो आज योग की तरफ उन्मुख हुई है, उसका मुख्य कारण यही है कि वे लोग आत्म-नियंत्रण की जरूरत महसूस करने लगे हैं। उन लोगों का घर कितना बढ़िया रहता है, तुम नहीं जानते। साधारण-से-साधारण मजदूरों के घर या साधारण-से-साधारण दफ्तर जैसे होते हैं, मैं समझता हूँ कि भारत में करोड़पतियों के घर भी वैसे नहीं होते हैं, वैसी सुविधायें नहीं होती हैं; लखपतियों की तो बात ही छोड़ दो। मगर इतने सम्पन्न होते हुए भी वे लोग सुखी नहीं हैं। सारी सुविधायें होते हुए भी वे सुख का भोग नहीं कर पा रहे हैं।

सुविधा एक वस्तु होती है और सुख दूसरी। सुविधा और सुख के बीच में अगर तुमको सेतु तैयार करना है, तो उसके लिए सबसे पहले तुम अपने मन की स्थिति को ठीक करो। मन की स्थिति को ठीक नहीं करोगे, तो तुम्हारी सुन्दरता, परिवार, घर-सम्पत्ति, समाज और राष्ट्र, सब बेकार हैं। अगर तुम किसी के नजदीक नहीं आ सकते और उसका दुःख-दर्द नहीं बाँट सकते, तो क्या सुखी रह पाओगे?

इसलिए इस देश के निवासियों को हम याद दिला रहे हैं, यह स्थिति जरूरी है, मगर सत्संग भी अनिवार्य है। रोटी, कपड़ा और मकान जरूरी है, मगर उससे ज्यादा जरूरी है इन सबको भोगने वाला इन्सान। अगर तुम इस बात पर विश्वास नहीं करते हो, तो आज दुनिया के कोने-कोने में जाकर देख सकते हो। उन देशों में विचित्र आत्महत्यायें हुई हैं, जहाँ संसार के सभी देशों से अधिक भौतिक सुविधायें हैं। नॉर्वे, स्वीडन और डेनमार्क में प्रत्येक व्यक्ति

सम्पन्न है, प्रत्येक व्यक्ति की औसत आमदनी अन्य देशों से कहीं अधिक है, मगर फिर भी दुनिया में सबसे अधिक आत्महत्यायें वहाँ हुई हैं, क्यों? मैंने उन लोगों से पूछा, 'तुम लोग ऐसा क्यों करते हो? तुम्हारी समस्या क्या है?' जब मैंने सुना, तो उनकी एक नहीं, अनेक समस्यायें सामने आयीं।

जब मनुष्य का मन विषयों को भोगता है, तो विषय उसके मन का भोग करने लगते हैं, फिर मन और अधिक विषय-भोग करना चाहता है और इस प्रकार विषय तथा मन एक-दूसरे को भोगते जाते हैं। अन्त में विषय को भोगते-भोगते उन लोगों के मन में एक नीरसता आ जाती है। नीरसता किसको कहते हैं? जब भोग से ऊब होने लगती है, आकर्षण नहीं रहता, उसी को नीरसता कहते हैं। जैसे, हम बिहार के लोग हैं और यहाँ के आम प्रसिद्ध हैं। हम आम खाते हैं और हमको आम अच्छे भी लगते हैं। इनकी मिठास, इनका स्वाद बेजोड़ है, लेकिन कहीं बाहर आम मिलता है, तो हम कहते हैं, हम बिहार के लोग हैं, आम नहीं खाते हैं। इसी प्रकार विषयों को भोगते-भोगते मन के अन्दर एक प्रकार की नीरसता आ जाती है। जब मनुष्य के मन-मस्तिष्क में नीरसता या रसहीनता उत्पन्न होती है, तब मनुष्य को लगता है अब तो भोग में कुछ नहीं है। जिस भोग के लिए हम जीवित रहे, जब उस भोग में कुछ है ही नहीं, तो फिर किसके लिए जीवित रहें? यही उनकी आत्महत्याओं का कारण है।

हमें एक लड़की मिली। उसकी अवस्था सोलह साल की थी। उसने कहा, 'मुझे तो लगता है जीने का कोई प्रयोजन ही नहीं है।' हमने पूछा, 'क्यों नहीं है जीने का प्रयोजन?' उसने कहा, 'टेलीविजन में कुछ मजा नहीं आता, सहेली के साथ जाती हूँ तो मजा नहीं आता, क्लब में चॉकलेट खाने में मजा नहीं आता, कहीं मजा नहीं आता।' इसको कहते हैं, नीरसता। ऐसा क्यों है? जब मनुष्य की विषयों को ग्रहण करने वाली इन्द्रियाँ कुण्ठित हो जाती हैं, तब मनुष्य के अन्दर नीरसता उत्पन्न होती है और उस नीरसता के कारण मनुष्य को जीवन में कोई प्रयोजन मालूम नहीं पड़ता है। तभी आत्महत्याएँ होती हैं, पागलपन होता है।

अगर इस सभ्यता को तुम अपने देश में लाना चाहते हो तो लाओ, मगर इतिहास तुमको माफ नहीं करेगा। पश्चिम के वे समाजशास्त्री जो इस सभ्यता को लेकर आये हैं और स्वयं को आधुनिकता का एक मसीहा मानते हैं, आगे आने वाला इतिहास उनको पन्नों में से निकाल बाहर करेगा। चाहे वे कोई भी रहे हों, उनको माफी नहीं दी जा सकती, क्योंकि वे मानवता को ऐसी राह

पर ले गये हैं, जो विनाश की ओर जाती है। सोलह साल की लड़की मुझसे कहती है, जीवन में कोई आनन्द नहीं। हमने कहा, चलो मुंगेर, हम तुम्हारा सिर मुड़ायेंगे और आसन करायेंगे। हमारे जितने स्वामी हैं, सबने हमसे यही कहा था और हमने उनको वही बतलाया है। चलो, तुमको भी जीवन का प्रयोजन बतलायेंगे।

भोग ही जीवन का लक्ष्य नहीं है। भोग के अलावा भी मनुष्य के जीवन का एक लक्ष्य हो सकता है। जब तक तुम भोग भोगना चाहो, भोगो। मगर जिस दिन भोगों में नीरसता आ जाये, उस दिन मेरी बात को याद करना।

## यौगिक संस्कृति

योग की संस्कृति को पारिवारिक संस्कृति के रूप में अपनाना पड़ेगा। पारिवारिक संस्कृति बनाने के पहले तुम लोगों को मेरे यहाँ आकर स्नातक बनना पड़ेगा। पहला गुरु तो नारी वर्ग है। पुरुष वर्ग गुरु नहीं है, क्योंकि ये लोग परिवार के लिए पैसा लाने वाले हैं। नारी वर्ग गुरु है। लेकिन तुम लोगों ने हम सबको चौपट कर दिया। तुम लोगों ने फैक्टरी से केवल माल पैदा कर दिया, मगर कोई खराबी नहीं देखी। अगर खराबी थी, तो मेकैनिक के पास नहीं भेजा। कम-से-कम तुम सब अब तो मेकैनिक के पास आओ।

इस योग को अगर हमलोगों की पारिवारिक संस्कृति के रूप में प्रवेश करना है, तो सबसे पहले नारी वर्ग को ठीक करना होगा। आप लोग खराब नहीं हो, मगर आप लोगों को ठीक-ठीक बतलाया ही नहीं गया है। हम लोगों के देश में आज जो भी बात कही जा रही है, वह केवल बाहर की बातें कही जा रही हैं। शरीर को पाउडर-क्रीम लगाने से क्या होता है, कैंसर दूर होता है क्या? दमा दूर होता है? मधुमेह दूर होता है? जब समाज के अन्दर कोढ़ है, तो ऊपर-ऊपर पाउडर-क्रीम लगाने से क्या लाभ?

समाज व्यक्ति पर निर्भर रहता है और व्यक्ति कमजोर है। केवल आप ही के यहाँ नहीं कह रहा हूँ, हमारे बिहार में भी यही हालत है। बड़ी मुश्किल है, लोग बात करते जाते हैं, और थोड़ी देर में तनाव। बघेलखण्ड के एक गाँव में गया था। वहाँ एक स्कूल में मास्टरों के साथ अन्य पचीस-तीस व्यक्ति थे। एक व्यक्ति बड़े जोर से खाँसा और वहीं पर थूक दिया, कोई डिब्बा तो रखते!

एक संस्कृति, जिसमें कोई एक घण्टा शांत नहीं रह सकता, वह संस्कृति जीवित नहीं रह सकती। छोटी-से-छोटी शक्ति थोड़े-से परिश्रम से उसे बिठला सकती है। इन्सान को बहुत मजबूत होना चाहिए। तुमने नेपोलियन की कहानी पढ़ी होगी, तीन-तीन दिन तक घोड़े पर सोता था। जब महात्मा गाँधी हमारी जन्मभूमि में आये थे, तब हम लोग छोटे-छोटे थे, हमको पंखा घुमाने को कहा जाता था। उनका व्यक्तित्व भी अद्भुत था।

अब तुम लोग एक नया जीवन शुरू करो, एक नयी संस्कृति की शुरुआत करो। मेरा मतलब यह नहीं कि तुम दुनिया का आनन्द मत लो। मेरे कहने का मतलब यह है कि सुविधाओं को भोगने के लिए तुम्हें एक स्वस्थ मन की आवश्यकता है। तुम्हें मिठाई खाने के पहले मधुमेह ठीक करना होगा। मुर्गी और अण्डा खाने के पहले रक्तचाप ठीक करना होगा। मगर नहीं खाना ही ठीक रहेगा। अनुपयुक्त रूप से जीवन जीने से लोगों को मधुमेह और कैंसर हो सकता है, रक्तचाप बढ़ सकता है और समय से पहले ही टिकट कट सकता है। योगमार्ग भोग और सुख का विरोध नहीं करता, बल्कि वह एक स्वस्थ मन, स्वस्थ शरीर और अनुशासित व्यक्तित्व का निर्माण करता है। उससे आपके बच्चों का जीवन स्वस्थ और सुंदर बनेगा। इसी कल्पना को मन में रख कर योग सिखला रहे हैं।

अगर हमारा समाज किसी चीज की आवश्यकता महसूस करता है, तो योग के द्वारा उसका कल्याण होगा। अतः सबसे पहली चीज है योग आश्रम। विदेशों में लोगों ने मेरे को सैकड़ों एकड़ जमीन योग आश्रम बनाने के लिए उपलब्ध करा दी, क्योंकि वे लोग महसूस करते हैं कि उनके समाज को जीवित रखने के लिए योग विद्या एक अनुशासन की संजीवनी बनकर आयी है। उनके शरीर के लिए एक अमर विद्या बनकर आयी है। अब बिलासपुर में भी आश्रम बनेगा तो बड़ी खुशी होगी।

*– 9 जुलाई 1979, राघवेन्द्र सभा भवन, बिलासपुर*

# योगविद्या पत्रिका का अनुभव

स्वामी देवतत्त्व

उस समय मैं लगभग सत्रह वर्ष का था। मेरे दो युवा मित्रों की क्रमशः अकस्मात् मृत्यु ने मुझे झकझोर कर रख दिया। ये दुर्घटनाएँ मुझे ऐसे आयाम में ले गयीं जहाँ मैं पहले कभी नहीं गया था। मन को अनेक प्रश्नों ने घेर लिया, जिनके बारे में मैं सोचना तक नहीं चाहता था। पर अब वे प्रश्न मेरे जीवन से अधिक महत्त्वपूर्ण लगने लगे थे, क्योंकि वे मेरे अस्तित्व से सम्बंधित थे। मनुष्य मरता क्यों है? मरने के बाद क्या होता है? मैं कहाँ से आया हूँ? मेरा अंतिम स्थान कौन-सा है? संसार में लोग इतनी भाग-दौड़ किस प्रयोजन से कर रहे हैं? मैं कितना सोचता, पूछता और खोजता था। लोग कहते कि जैसे सभी लोग खुशी के लिए जीते हैं वैसे तुम भी जियो और भगवान का नाम लो, पागलों-सा प्रश्न क्यों पूछते हो? पर मैं पूछता, 'कौन-सी खुशी? जब स्वयं अपने बारे में नहीं जानता।'

यूँ तो बचपन से मंदिरों में जाता था। पर अब भगवान की मूर्त्ति को जब देखता तो मेरी आँखों में आँसू आ जाते, क्योंकि मेरी आँखों को केवल पत्थर ही दिखाई देता था। मैं एक अति सामान्य, सड़क-छाप युवक, और अब ऐसे गम्भीर प्रश्नों में पूरी तरह उलझ चुका था। ईश्वर से रहित दुनिया में लोगों की हँसी-ठिठोली और अपने अस्तित्व को देखने तक की इच्छा नहीं बची थी, अपने साँस के चलने तक से असंतोष होता था। अपने नास्तिक जीवन के साथ मैं अकेला था।

ऐसे में मैं एक दिन अपनी मौसी के यहाँ बिलासपुर जिले के एक गाँव में गया। वहाँ अपनी मौसेरी बहन से अपने वही अटपटे प्रश्न किये तो दीदी ने कहा कि स्वामी सत्यानंद जी अवश्य तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर जानते होंगे। इस पर मैंने कहा, 'किसी के भी बोलने पर आप मान लेती हो, मैं कुछ भी बोलूँगा तो मान लोगी क्या?' इस पर उन्होंने कहा कि किसी भी ऐरे-गैरे और स्वामी सत्यानंद में जमीन-आसमान का अंतर है। मैंने उनकी ओर देखा तो उनके मुख पर बाल-सुलभ निश्छलता दिख रही थी। अब मुझे आशा की किरण मिली कि वे मुझे ऐरा-गैरा जानकर किसी सार तत्त्व के बारे में बताएँगी।

फिर मैंने आगे पूछा, 'कौन हैं ये स्वामी सत्यानंद?' उन्होंने कहा, 'वे मेरे पिताजी के गुरुदेव हैं और स्वयं ईश्वर-तुल्य हैं।' मैंने कहा, 'दीदी, मुझे उनके बारे में बताओ न।' तब उन्होंने मेरे हाथ में योगविद्या पत्रिका दी, जिसमें प्रथम

बार मैंने स्वामी सत्यानंद जी का दर्शन किया और आश्चर्य! उसमें स्वामी सत्यानंद जी ने मृत्यु से सम्बंधित बातें ही बतायी थीं और एक मनोवस्था के बारे में उन्होंने बताया था कि ऐसे में लोगों की हँसी चुभती है और अपने साँस तक से असंतोष होता है।

घोर अंधकार के बीच मुझ पागल को भी समझने वाला एक परम मित्र स्वामी सत्यानंद के रूप में मिल चुका था और प्रथम आध्यात्मिक नायक के रूप में उनका मेरे जीवन में प्रवेश हुआ। हालाँकि मन संतुष्ट नहीं था, पर मैं इतना जानता था कि इस संसार में वे ही हैं जो मुझे जानते हैं और अवश्य ही उनके पास मेरे प्रश्नों और समस्याओं का निदान होगा। फिर मैंने अपने पते पर योगविद्या मंगायी और उनके संतत्व से ओत-प्रोत, अमृत-तुल्य वचनों को पढ़ा, उनकी एक कविता को पढ़ा – *जिसके व्यक्तित्त्व के रेशे-रेशे से तुम परिचित हो...*। इस कविता ने मेरे सारे क्लेश हर लिए और मैं उस साधु के सम्मान में स्तब्ध हो गया। अपने भावों को केवल इन्हीं शब्दों से अभिव्यक्त कर सकता हूँ कि स्वामी सत्यानंद जी ने शिशु-भोजन के रूप में योगविद्या पत्रिका के द्वारा मुझे पोषित किया और उनके माध्यम से ही मुझे परमपूज्य गुरुदेव की छत्रछाया में रहने का सौभाग्य मिला।

# योग में शुद्धि की प्रक्रिया

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

योग का तात्पर्य संयोजन या मिलन से है – वह संयोजन चाहे निम्न और उच्च मन का हो या जीवात्मा और परमात्मा का। इस उच्च लक्ष्य को आप योग के अभ्यासों द्वारा सिद्ध कर सकते हैं। जब आप एस्प्रीन की गोली खाते हैं तो उसका पार्श्व-प्रभाव पैप्टिक अल्सर के रूप में हो सकता है, लेकिन योग के पार्श्व-प्रभाव हमेशा सकारात्मक होते हैं। योग से हमें मानसिक स्पष्टता, उदात्त व्यक्तित्व और नैतिक चरित्र प्राप्त होता है। लेकिन यह सब योग का प्रयोजन नहीं। योग का प्रयोजन मिलन है और इसे सिद्ध करने के लिए शुद्धि पर बल दिया जाता है। यौगिक विचारधारा के अनुसार पहले शरीर के स्तर पर शुद्धिकरण होता है और फिर प्राणों के स्तर पर, जिससे शरीर के प्रत्येक अंग में प्राणों का प्रवाह निर्बाध रूप से होता है। फिर मानसिक स्तर पर शुद्धि होती है जहाँ मानसिक शक्तिओं को संतुलित तथा संगठित किया जाता है।

**तीन शरीर**

योग तीन शरीरों के बारे में चर्चा करता है – स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण। शुद्धिकरण की प्रक्रिया इन तीनों शरीरों में होती है। हर व्यक्ति अपने भौतिक शरीर को शुद्ध करने का तरीका जानता है, और आप में से कुछ लोग अपने मन को अन्तर्मौन, अजपा-जप अथवा ध्यान के अभ्यासों द्वारा शुद्ध करना जानते होंगे। शरीर तथा मन क्रमश: स्थूल तथा सूक्ष्म आयामों से सम्बन्धित हैं।

लेकिन आपको कारण शरीर में पहुँचना तथा उसे शुद्ध करना नहीं आता है। जबकि देखा जाए तो वह सबसे महत्त्वपूर्ण शुद्धिकरण है, क्योंकि आपके सभी कर्म, संस्कार, वासनाएँ और इच्छाएँ वहीं पर संचित रहते हैं। जन्म-जन्मान्तरों से हम विभिन्न योनियों में जन्म लेते आए हैं और उन सब के संस्कार कारण शरीर में ही संचित हैं।

समय-समय पर ये संस्कार विचारों तथा स्वप्नों के रूप में सतह पर उभरते हैं। वे आपको दु:खी और परेशान कर देते हैं क्योंकि आपको उन्हें सम्भालना नहीं आता। आपको इन संस्कारों का परिष्कार करना होगा। शुद्धिकरण के बिना आप प्रगति नहीं कर सकते। जीवन में बाधाएँ और अवरोध सदा बने

रहते हैं, वे आपके सामने संघर्ष, वेदना, व्यथा, विषाद, लोभ तथा घृणा के रूप में आ खड़े होते हैं। योग के अनुसार केवल ध्वनि-तरंगें ही कारण शरीर तक पहुँचकर आपके व्यक्तित्व के इस आयाम को प्रभावित कर सकती हैं।

## ध्वनि और सृष्टि

सांख्य तथा योग दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि – ब्रह्माण्ड, आकाशगंगा, सौरमण्डल, ग्रह-नक्षत्र, पर्वत, नदियाँ, पेड़-पौधे, आप और मैं, हम सभी ध्वनि से उत्पन्न हुये हैं। यदि यह मान्यता सत्य है तो निश्चित रूप से ध्वनि हमें सकारात्मक रूप से प्रभावित करेगी, क्योंकि यही हमारी उत्पत्ति का मूल स्रोत है। सांख्य दर्शन से सहमत होकर आज विज्ञान भी यह मानने लगा है कि सम्पूर्ण सृष्टि ध्वनि और प्रकाश का ही खेल है।

सांख्य दर्शन में तीन प्रधान तत्त्व हैं – बिन्दु, नाद और कला। बिन्दु में स्पदंन होता है और उस स्पंदन से नाद का आविर्भाव होता है। इस अनुभवातीत ध्वनि को ॐ का नाम दिया गया है। जिन लोगों ने बाइबिल का अध्ययन किया है उन्हें मालूम होगा कि उसकी पहली पंक्ति इस प्रकार है –'प्रारम्भ में केवल शब्द था और वह शब्द ईश्वर के पास था।' योग, तंत्र तथा सांख्य दर्शन में उस शब्द को ॐ कहा गया है। सभी वस्तुओं का सृजन उस एक ध्वनि से हुआ है। आज आप जितनी ध्वनियों को सुनते हैं, चाहे वह घड़ी की टिक-टिक हो, संगीत के स्वर हों या आपकी बोलचाल की भाषा, ये सब ॐ से उत्पन्न हुई हैं।

किसी भी ध्वनि-तरंग के दो पहलू होते हैं, एक उसकी प्रबलता, और दूसरी उसकी आवृत्ति। मंत्र उच्च आवृत्ति वाली ध्वनि-तरंगें होते हैं जो सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। उन्हें ग्रहण करने के लिए हमें अपने आंतरिक उपकरण को परिष्कृत तथा समस्वरित करना पड़ता है, जैसे प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों ने किया था। उन्होंने अपनी श्रवणेन्द्रियों को इतना परिष्कृत किया कि वे उन सूक्ष्म मंत्रों को ग्रहण करने में सक्षम हो सके। वे मंत्रों के द्रष्टा बने और भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए उन्हें मानव समाज को सौंप गये।

## मंत्र का प्रभाव

ध्वनि का प्रभाव बहुत ही गहन और व्यापक होता है जिसे हम अपने दैनिक जीवन में भी देख सकते हैं। जब हम विश्राम करना चाहते हैं तब मधुर संगीत

चालू कर देते हैं। तत्काल ही हम उससे प्रभावित हो जाते हैं। यदि मैं अभी चॉकलेट शब्द का उच्चारण करूँ तो तुरन्त ही उन सभी लोगों के मुँह में पानी आ जाएगा जिन्हें चॉकलेट पसंद है। यदि मैं कहूँ कि आप एक अच्छे व्यक्ति हैं तो आपको उसी समय अच्छी अनुभूति होगी। लेकिन यदि मैं कहूँ कि आप बुरे व्यक्ति हैं तो तत्काल आपकी मनोदशा बदल जायेगी। यह ध्वनि का स्थूल स्तर पर प्रभाव है। हम जानते हैं कि ध्वनि से हिमस्खलन तक हो सकता है और यह काँच को चकनाचूर भी कर सकती है। ध्वनि पेड़-पौधों

और पशु-पक्षियों को भी प्रभावित कर सकती है। यदि हम अपने पौधों को संगीत सुनायें तो उनका विकास बेहतर होगा। यदि हम अपनी गायों को संगीत सुनाते हैं तो वे अधिक दूध देती हैं।

मंत्र एक अति उच्च आवृत्ति की ध्वनि है। जब यह हमारी चेतना में प्रवेश करती है तो चेतना की गहराई तक पहुँचकर हमारे कारण शरीर पर अपना प्रभाव डालने लगती है। मंत्र साबुन की तरह काम करता है जो मन के भीतर की मैल को सतह तक ले आता है। सतह पर आ जाने के बाद संस्कारों का निष्कासन होता है। योग-विज्ञान में आसन तथा प्राणायाम के साथ-साथ मंत्र को भी एक महत्त्वपूर्ण योगांग माना गया है। इसलिए अपने योगाभ्यास तथा दैनिक जीवन शैली में मंत्र को अवश्य समाविष्ट करना चाहिए।

हमारे मस्तिष्क का तीन चौथाई भाग अभी निष्क्रिय है। अपनी पूर्ण क्षमता को विकसित करने के लिए मंत्र अनिवार्य है। कुछ मंत्र जैसे महामृत्युंजय तथा गायत्री मंत्र सार्वभौमिक मंत्र हैं। ॐ मूल मंत्र है। ऐसे मंत्रों का प्रयोग हर व्यक्ति कर सकता है। लेकिन हमारे आध्यात्मिक विकास को तीव्र गति प्रदान करने वाला जो मंत्र है वह है गुरु मंत्र। गुरु मंत्र से हमें सब कुछ प्राप्त हो सकता है। यह हमारी सबसे कीमती निधि है जो हमें जीवन के हर मोड़ पर सहायता करेगी। मंत्र एक ऐसा कवच है जो नकारात्मक प्रभावों से हमारी सदा रक्षा करता रहता है।

## दीक्षा

मंत्र दीक्षा में गुरु से शिष्य की ओर ऊर्जा एवं प्रेरणा सम्प्रेषित होती है। दीक्षा की व्युत्पत्ति दिक् शब्द से हुई है जिसका अर्थ है दिशा। योग के अभ्यासों द्वारा जिस शक्ति को जागृत किया जाता है उसे सही दिशा मिलनी चाहिए, नहीं तो वह छितरा जाती है। इस शक्ति को उच्च केन्द्रों की ओर दिशान्तरित करना पड़ता है और यह काम मंत्र करता है।

जिस ध्वनि से हमारा विकास हुआ है वह शक्ति का विशुद्ध स्वरूप है। अभी यह शक्ति हमारे पदार्थमय, भौतिक शरीर में सीमित है, और हमें इसे पदार्थ के बंधन से विमुक्त करना है। यदि हम उच्च अनुभवों को प्राप्त करना चाहते हैं, यदि हम अपनी आत्मा के निकट आना चाहते हैं, यदि हम जीवात्मा और परमात्मा का संयोग प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें पहले शक्ति को स्वतंत्र करना होगा, और इसके लिए मंत्र अत्यंत प्रभावी उपाय है।

# श्रद्धा और विश्वास

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

हर मनुष्य के अन्दर, चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या गँवार, एक चीज जरूर है। मैं दिमाग की बात नहीं बोल रहा हूँ, दिमाग और बुद्धि तो है ही, लेकिन एक अलग चीज है जिसे कहते हैं विश्वास। अब यदि यह विश्वास ठीक बैठ गया तो फिर आदमी विष्णु और शंकर भी बन सकता है। लेकिन उस विश्वास में कहीं पर भी, थोड़ी-सी भी खटाई नहीं पड़नी चाहिए। विश्वास में खटाई पड़ती है तो अपनी ही खोपड़ी से। आदमी आजकल बी.ए., बी. कॉम. पढ़ लेता है तो सोचता है कि मैं बहुत जानता हूँ, गुरु को आजमाकर देखूँगा। नहीं, विश्वास आजमाने की चीज नहीं है। विश्वास के लिए श्रद्धा का होना आवश्यक है। श्रद्धा और विश्वास को शिव और पार्वती का रूप माना जाता है।

*भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।*
*याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥*

श्रद्धा और विश्वास के ये दो रूप हैं, भवानी और शंकर, जिनके बिना योगी भी अपने अन्दर में रहने वाले भगवान को नहीं देखते हैं। माल अपने

अन्दर है, लेकिन दिखता नहीं है। उसे देखने के लिए श्रद्धा और विश्वास की जरूरत पड़ती है।

जिस दिन हम पैदा हुए, अजनबी की तरह यहाँ आए। यह दुनिया तो हमारे लिए अजनबी थी। और जिस माँ की गोद में हम पैदा हुए, उसके लिए भी हम अजनबी थे कि यह कहाँ से आ गया। पर अजनबी होते हुए भी हमने एक-दूसरे के साथ धीरे-धीरे सम्बन्ध बनाना शुरू कर दिया। ज्यादा दिन तक अजनबी रहने में मजा नहीं आता है। हम लोगों ने जो रिश्ते कायम किए हैं, वे तो मान्यताएँ हैं। यह मेरा बेटा है, काम खतम। इसमें कोई शक नहीं है। यही श्रद्धा और विश्वास है।

विश्वास और श्रद्धा बड़ी विचित्र होती है। जहाँ एक बार जम जाती है, वहाँ अटक जाती है, एकदम फिट हो जाती है। हमने जब घर छोड़ा तब हम ढूँढते-ढूँढते कई जगह गए कि किस दुकान में माल मिलेगा, पर कहीं मिला ही नहीं। एक-के-बाद-एक जगह छोड़ते ही चले गए। वैसे सब लोग अच्छे ही थे। आखिर में उदयपुर, राजस्थान में एक महात्मा के यहाँ हम छः महीने रहे। वे काफी बूढ़े थे, पर बहुत अच्छे थे। उन्होंने तंत्र के बारे में हमको सब सैद्धांतिक जानकारी दी। वे हमारे बारे में सोचते थे कि अच्छा जवान लड़का है, पढ़ा-लिखा है, एकदम तेज-तर्रार है, आश्रम सम्भालेगा। पर हमारा मन लगा नहीं। किसलिए मन नहीं लगा, हमको नहीं मालूम। वे बहुत अच्छे आदमी थे, ख्याल भी किया हमारा, समयाचार तंत्र, कौलाचार तंत्र तो फलाना तंत्र, सब हमको सिखलाया भी। एकदम बारीकी में वह सब समझाया, जो हम आज बोलते हैं। पर हम वहाँ से भाग गए। हमने सोचा, 'नहीं, ये हमको फिट नहीं बैठते।'

वहाँ से हम किसी तरह ऋषिकेश पहुँचे। ऋषिकेश में काली कम्बलीवाले के यहाँ गए, उन्होंने हमें एक गुरुद्वारे में ठहराया। दूसरे दिन कुमाऊँ का ही एक आदमी, जो वहाँ मैनेजर था, आया। उसे पता लगा कि कुमाऊँ से कोई लड़का आया है, अठारह-बीस साल का। बहुत छोटी उम्र थी उस समय हमारी। हमने कहा, 'हम यहाँ काम खोजने नहीं, गुरुजी की खोज में आए हैं।' उसने कहा, 'तब तुम कैलास आश्रम जाओ।' कैलास आश्रम में स्वामी विष्णुदेवानन्द जी के पास गए, उनसे कहा, 'हम संन्यास के लिए आए हैं।' वे बोले, 'हम तो संन्यास देते नहीं हैं। तुम कहीं और से संन्यास ले लो और यहाँ आ जाओ, हम तुमको वेदान्त आदि के ग्रन्थ पढ़ा देंगे।'

हमने पूछा, 'तो हम कहाँ संन्यास लेंगे?' उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी के बारे में बता दिया। हम वहाँ गए और स्वामीजी को देखते ही हमारा मन फिट बैठ गया। फिर वहाँ से हम कभी टले ही नहीं। कभी मन ही नहीं किया। बहुत छोटा-सा आश्रम था स्वामी शिवानन्द जी का। न रहने के लिए जगह थी, न शौच के लिए। जंगल में जाना पड़ता था। खाने का भी कोई हिसाब नहीं था। रोज नौ बजे तीन मील चल कर काली कम्बलीवाले के यहाँ से भिक्षा लानी पड़ती थी। न कम्बल का हिसाब, न पानी का, कुछ भी नहीं था। कभी पीलिया हो गया, कभी हेपाटाइटिस, कभी मलेरिया, तो कभी कुछ हो गया। लेकिन एक बार जो वहाँ मन लग गया, फिर वहाँ से हटा नहीं।

कहने का मतलब यह कि जहाँ जिसका मन लग जाता है, जहाँ जिस पर विश्वास हो जाता है, वहाँ फिर दुविधा नहीं रहती। यह बात हमेशा याद रख लो। दुविधा है तो विश्वास खण्डित है। जिस तरह मनुष्य के अन्दर बुद्धि है, तर्क है, उसी तरह मनुष्य के अन्दर एक तत्त्व है, जिसे कहते हैं विश्वास। सच पूछो तो ईश्वर की अवधारणा विश्वास के ही आधार पर है। और ऐसा विश्वास तो हमेशा अंधविश्वास ही रहता है। अब इस विश्वास का जो फायदा उठाना चाहे, उठाएगा। विश्वास नहीं तो जीवन में कुछ नहीं।

*– 14 जनवरी 2009, रिखियापीठ*

# संस्कार – आध्यात्मिक चेतना का आधार

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

समुचित जीवनशैली के दो आधार हैं – संस्कार और संस्कृति। जीवनशैली केवल आपके खान-पान, रहन-सहन और सोने-जागने तक सीमित नहीं है। ये जीवनशैली के हिस्से जरूर हैं, लेकिन जीवनशैली के वास्तविक आधार आपके संस्कार हैं, जो आपकी अभिव्यक्तियों में निरंतर प्रकट होते हैं, और संस्कृति है, जो आपके आचरण से, आपके आत्म-विकास के लिए किए गए कर्मों से निर्मित होती है। व्यक्ति से समाज बनता है, समाज से संस्कृति का निर्माण होता है, संस्कृति संस्कार बनाती है, संस्कार एक सभ्यता का निर्माण करते हैं और सभ्यता पुन: संस्कृति, समाज और व्यक्ति को विकसित होने में मदद करती है। यह एक निरन्तर चलने वाला चक्र है। लोग इस चक्र को देख या समझ नहीं पाते, क्योंकि मन भटक जाता है, अन्य वस्तुओं की ओर आकर्षित हो जाता है।

यदि आप जीवन के इस चक्र को स्वीकार करते हैं जहाँ व्यक्ति, समाज, सभ्यता, संस्कृति और संस्कारों के बीच निरन्तर चक्रवत् गति है, तो आप महसूस करेंगे कि इस पूरे क्रम में आपकी कई चिंताएँ आकस्मिक हैं, उनकी कोई विशेष भूमिका नहीं। शारीरिक बीमारियाँ आकस्मिक हैं, वे जीवन में असंतुलन, अनियमितता और अनुशासनहीनता के कारण होती हैं। यदि आचरण में किसी भी प्रकार की अनियमितता है, चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक, तो इसका परिणाम रोग होगा। यदि इन आचरणों को ठीक कर लिया जाए तो कोई रोग नहीं होगा। समस्या यह है कि जब आप भौतिक संसार में संलग्न होते हैं तो आपका ध्यान केवल शारीरिक बीमारियों की ओर ही जाता है। आप संस्कारों और संस्कृति को अपने जीवन का हिस्सा नहीं मानते। यहीं पर आध्यात्मिक सजगता विकसित करने की आवश्यकता आती है। यह बात शास्त्रों में, और सभी ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओं और गुरुओं की वाणी में भी कही गयी है।

## आध्यात्मिक सजगता

आध्यात्मिक सजगता कुछ और नहीं, बल्कि संस्कार और संस्कृति को जानना है। जिसे भौतिकवादी सजगता कहते हैं, उसमें संस्कार और संस्कृति, दोनों का अभाव होता है। देखा जाए तो प्रत्येक व्यक्ति अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष के लिए प्रयास करता है। एक साधु भी इन चारों में संलग्न रहता है और एक गृहस्थ भी। अंतर केवल यह कि भौतिकवादी सजगता विषय-वस्तुओं, भोग-विलास और सुख-आराम की ओर उन्मुख होती है, जबकि आध्यात्मिक सजगता योग, अध्यात्म, संस्कार और संस्कृति की ओर उन्मुख होती है। साधु और गृहस्थ, दोनों के लिए कर्म तो बाहरी रूप से समान होते हैं, फिर भी मानसिक दृष्टिकोण में अंतर के कारण एक ही कर्म अलग-अलग तरीकों से किया जाता है। मानसिक दृष्टिकोण के अंतर को संस्कार और संस्कृति कहते हैं।

अध्यात्म का शाब्दिक अर्थ स्वयं के समीप आना है। हमेशा से माना गया है कि जब बहिर्मुखी प्रवृत्ति प्रबल होती है तो आप स्वयं से दूर होते हैं। इसके विपरीत जब अंतर्मुखता आती है और आप आत्म-चिंतन और उच्चतर तत्त्व के अनुभव की ओर प्रवृत्त होते हैं, तो आप स्वयं के निकट आते हैं। जब भोग वृत्ति होती है, तो आप स्वयं से दूर होते हैं। जब योग वृत्ति होती है, तो आप स्वयं के निकट होते हैं। इसे ही अध्यात्म कहते हैं। लोग इस विचार को आत्मा और परमात्मा के मिलन आदि अलग-अलग तरीकों से समझाते हैं, पर मूल बात यह है कि यह अपने आन्तरिक प्रकाश के निकट आने की प्रक्रिया है।

अपने प्रकाश के निकट आने का क्या अर्थ है? यही कि आप स्वयं को तमोगुण के, अज्ञान के अंधकार से मुक्त करें। आपको उन कर्मों, विचारों और व्यवहारों से मुक्त होना है जिनका कोई प्रयोजन नहीं है। तब सत्त्व का प्रकाश स्वतः ही चमकेगा और आप सत्य की उपस्थिति का अनुभव करेंगे, उससे जुड़ेंगे। जैसे-जैसे यह जुड़ाव बढ़ेगा, धीरे-धीरे आपको सच्चिदानंद का अनुभव होने लगेगा। जैसे आप बाह्य संबंधों में सुख का अनुभव करते हैं, वैसे ही आप आंतरिक सुख का भी अनुभव कर सकते हैं, लेकिन उस सुख को आनंद कहते हैं। इंद्रियों के माध्यम से आप जो अनुभव करते हैं उसे सुख कहते हैं, लेकिन जब इंद्रियाँ और उनके विषय नहीं रहते, जब इन सबका अतिक्रमण हो जाता है, तो वह अनुभव सुख का नहीं रहता, वह आनंद का होता है। सुख शब्द केवल इंद्रियों, मन और भावनाओं के अनुभव को दर्शाता है। आध्यात्मिक

सुख जैसी कोई चीज नहीं होती, यह शब्दों का गलत प्रयोग है। सुख केवल भौतिक होता है, आध्यात्मिक अनुभव आनंद है।

वह प्रक्रिया जिसके माध्यम से आप जीवन में तमस् को कम करते हैं और स्वयं को सत्त्व में स्थापित करते हैं, साधना कहलाती है। अध्यात्म से जुड़ने के लिए आप इसी विधि का प्रयोग करते हैं।

## संस्कार – जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्तियाँ

अगला पहलू संस्कार है। लोग संस्कार को किसी स्वभाव की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं, लेकिन यह अभिव्यक्ति क्यों होती है? यह व्यक्तित्व में निर्मित

एक विशेष स्थिति के कारण होती है, जो सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों तरह के गुणों को प्रकट कर सकती है। प्रक्रिया एक ही है। जब समुद्र मंथन हुआ, तो अमृत और विष, दोनों निकले। स्रोत एक ही था, ऐसा नहीं कि अमृत स्वर्ग से आया और विष सागर से। साधना में भी यही होता है। आप यह सोचकर साधना करते हैं कि इससे अच्छे संस्कार उभरेंगे, लेकिन नकारात्मक संस्कार भी निकल आते हैं। विष पहले निकलता है, अमृत अंत में। कुछ लोगों के लिए, अमृत पहले निकलता है और विष बाद में। ऐसा भी होता है। इस प्रकार, संस्कार एक स्थिति है, जो आपको एक निश्चित तरीके से सोचने और व्यवहार करने के लिए बाध्य करती है। किसी भी प्रकार का बौद्धिक चिंतन उस बाध्यकारी शक्ति के सामने टिक नहीं सकता; यह एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति है उस संस्कार की। एक असहाय अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति।

भय का अनुभव इसका एक उदाहरण है। यह अनुभव केवल मानसिक ही नहीं, शारीरिक भी होता है। हाथ काँपने लगते हैं, शरीर ठंडा पड़ जाता है, मन शून्य हो जाता है, आप निर्जीव, निर्बल और साहसहीन महसूस करते हैं। भय एक मानसिक स्थिति है, फिर भी शरीर इसके प्रभावों को अनुभव करता है। इसी प्रकार, क्रोध भी एक मानसिक स्थिति है, लेकिन यह भी शरीर द्वारा अभिव्यक्त होता है। क्रोध में आपका चेहरा लाल हो सकता है, आप चिल्ला सकते हैं, आँखें चौड़ी हो सकती हैं, उनसे आँसू भी निकल सकते हैं, यहाँ तक कि आप दूसरे व्यक्ति को थप्पड़ भी मार सकते हैं। ये सभी इंद्रियों की अभिव्यक्तियाँ हैं, हालाँकि अनुभव मन में हो रहा है। आपकी मनोदशा हर चीज को प्रभावित कर रही है।

हम ऐसे ऋषि-मुनियों के जीवन के बारे में पढ़ते हैं जिनमें सकारात्मक संस्कार स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त होते थे। हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानंद जी अपने बचपन में द्वार पर आये किसी भी भिखारी द्वारा माँगी गई कोई भी चीज दे देते थे – कंबल, भोजन, पैसा, कुछ भी। उन्हें अपने माता-पिता से अनुमति लेने का ख्याल तक नहीं आता था। उनके मन में बस यही विचार होता था, 'इस व्यक्ति को जरूरत है, इसे दे देना चाहिए।' अगर आपका बच्चा ऐसा करे तो आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी? आप शायद उसे डाँटेंगे। साथ ही आप शायद यह भी कह दें कि उसके संस्कार अच्छे हैं, वह करुणा से भरा है और किसी दूसरे व्यक्ति का दु:ख सहन नहीं कर सकता।

एक और परिस्थिति भी हो सकती है। कोई भिखारी दरवाजे पर आता है और बच्चा उसे तुरंत यह कहते हुए भगा देता है, 'तुम कौन होते हो मेरी सम्पत्ति में से हिस्सा माँगने वाले? अपने माता-पिता के धन और कमाई पर सिर्फ मेरा अधिकार है, तुम्हारा नहीं। निकल जाओ यहाँ से!' यह विपरीत स्वभाव है, जो नकारात्मक संस्कारों को दर्शाता है। इस प्रकार, आपके बाह्य कर्मों को जो निर्देशित करता है, वह एक आंतरिक संस्कार है।

अगर आप किसी रेलगाड़ी का पहिया देखें, तो उसे घुमाने वाला पिस्टन है। जब उसमें बिजली प्रवाहित होती है, तो उसे ऊर्जा मिलती है और वह पहिये को घुमाने लगता है। इसी तरह, मन और मस्तिष्क के भीतर भी बिजली का संचार होता है। विचारों के संचरण को एक विद्युतचुम्बकीय क्षेत्र के रूप में देखा जाता है। इस संसार में हर प्रकार की ऊर्जा विद्युतचुम्बकीय शक्ति का रूप धारण कर सकती है। यह सिद्धान्त केवल ऊर्जा के स्थूल रूपों के बारे में ही लागू नहीं होता, बल्कि ब्रह्माण्डीय ऊर्जा पर भी लागू होता है जो व्यापक और सूक्ष्म है।

ऊर्जा पहले मन को और फिर इंद्रियों को प्रभावित करती है। यह एक प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है जिसके कारण मन इंद्रियों को निर्देशित करता है और इंद्रियाँ कोई कर्म करती हैं। साथ ही, मन में कर्म के परिणाम की अपेक्षा भी होती है। इस प्रकार, शरीर और मन निरंतर एक संबंध में बने रहते हैं। इससे एक मनोदशा उत्पन्न होती है, और उसके आधार पर आप वर्तमान में एक व्यवहार अभिव्यक्त कर रहे होते हैं।

एक घटना याद आती है जब मैं तेरह-चौदह साल का था और दक्षिण अमेरिका से मध्य अमेरिका जा रहा था। हमारे विमान को पनामा में उतरने का निर्देश दिया गया क्योंकि वहाँ सैन्य तख्तापलट हो चुका था। देश के ऊपर से उड़ने वाले सभी विमानों को उतरने का आदेश दिया गया। जैसे ही हमारा विमान उतरा, सेना ने पूरे विमान को घेर लिया, फिर विमान में घुसकर सभी के पासपोर्ट और पहचान पत्र छीन लिए। किसी ने भी यह नहीं बताया कि हमें वहाँ कितनी देर तक रुकना होगा, या हमारे साथ क्या होने वाला है। कुछ देर बाद हमें विमान से उतरने के लिए कहा गया और फिर एक बड़े हॉल में बंद कर दिया गया। हर यात्री भय और चिंता से ग्रस्त था, कुछ लोग तो नर्वस ब्रेकडाउन की कगार पर दिख रहे थे। कुछ इधर-उधर टहल रहे थे, कुछ लगातार धूम्रपान कर रहे थे। मैं बस बैठ गया और सबको देखने लगा।

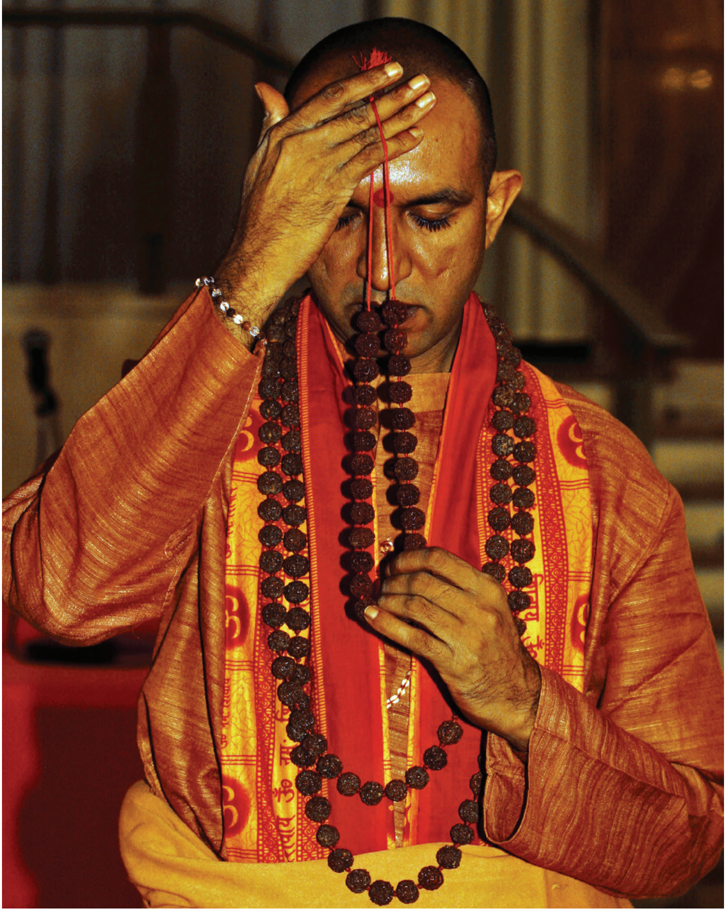

मैं सोच रहा था कि वे सब इतने चिंतित क्यों हैं। जहाँ तक मेरा सवाल था, मेरा मत स्पष्ट था – अगर मुझे आज मरना है तो जरूर मर जाऊँगा, अगर मुझे जीना है तो कोई भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता। इसलिए मैंने अपनी माला निकाली और दूसरों की तनाव भरी बातों में फँसने के बजाय जप करना शुरू कर दिया। सोचा, बेहतर है कि बस अपने साथ रहो। मैंने आँखें बंद नहीं कीं, मैं आस-पास देखता रहा और अपना जप करता रहा। कुछ समय बाद लोग मेरे पास आकर पूछने लगे, 'आप इतनी शांति से कैसे बैठे हैं?' वे समझ नहीं पा रहे थे कि ऐसी विकट परिस्थिति में भी कोई व्यक्ति कैसे शांत रह सकता है।

आज मैं उस घटना के बारे में सोचता हूँ तो यही लगता है कि मेरे संस्कारों ने मुझे शांत रहने दिया और अलग तरह से सोचने की प्रेरणा दी। मेरे संस्कारों ने मुझे संकट के समय भी संतुलित रहने का बल दिया, और यह शरीर और मन की एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति थी।

इस घटना से मैं यह बात समझाना चाह रहा हूँ कि जब किसी स्थिति में शरीर और मन एक साथ आते हैं तो उसे संस्कार कहते हैं। कभी-कभी संस्कार और आदत में अंतर करना मुश्किल हो जाता है। इटली के लोग कॉफी पीना पसंद करते हैं, वे अपनी रोजाना की कॉफी के बिना नहीं रह सकते। यह आदत है या संस्कार? बिहार के लोगों को अब शराबबंदी के कारण शराब की बोतल के बिना काम चलाना पड़ रहा है। यह संस्कार नहीं, आदत है। यह संस्कार तभी होगा जब पीने का विचार भी न आए, कोई लालसा न हो, मन उस विचार से पूरी तरह मुक्त हो और किसी भी स्थिति के अच्छे-बुरे पक्षों का आकलन करके उचित निर्णय ले सके। जब आप अच्छे और बुरे, सही और गलत में भेद नहीं कर पाते, तो आप आदत का अनुसरण कर रहे होते हैं। अगर मन मुक्त है, तो आप बुराई से दूर रहेंगे और अच्छाई को अपनाएँगे, इसलिए यह संस्कार बन जाता है। इस प्रकार, आदतें संस्कार नहीं हैं।

जब आप अच्छे गुणों को स्वीकार करते हैं तो उन्हें अपने व्यक्तित्व का हिस्सा बनने दें ताकि वे आपके जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट हों। फिर आप एक संस्कृति का निर्माण शुरू करते हैं। *सम्यक् कृति: इति संस्कृति:* – जब व्यक्ति के सभी कर्म संतुलित और समुचित होते हैं तो वह संस्कृति कहलाती है। संस्कृति समुदाय और समाज का समर्थन करती है, और मानवता के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

## आध्यात्मिक सजगता का विकास

किसी ने एक बार श्री स्वामीजी से पूछा, 'क्या मोक्ष, समाधि, आत्म-साक्षात्कार या ईश्वर-साक्षात्कार ही जीवन का लक्ष्य है? सभी कहते हैं कि यही है।' श्री स्वामीजी ने उत्तर दिया, 'ईश्वर-साक्षात्कार या आत्म-साक्षात्कार तो दूर की बात है, बहुत कम लोग ही वहाँ तक पहुँच पाते हैं। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को समझना चाहिए कि जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक सजगता का विकास है। अगर तुम ऐसा कर सकते हो तो ईश्वर-साक्षात्कार, मोक्ष, समाधि, सिद्धि – सब कुछ संभव है। तुम्हें जो प्रयास करना है, वह आध्यात्मिक सजगता विकसित करने के लिए है।'

आध्यात्मिक सजगता प्राप्त करने के लिए आपको पहले रास्ते में आने वाली बाधाओं को समझना होगा। जब तक आप बाधाओं को नहीं समझेंगे आप अपनी यात्रा पूरी नहीं कर पाएँगे। दुर्भाग्यवश आध्यात्मिक मार्ग पर

आने वाला हर व्यक्ति बाधाओं के बारे में नहीं, बल्कि उपलब्धियों के बारे में सोचता है। साधक यही सोचते रहते हैं कि उन्हें क्या मिलेगा और अपनी ऊर्जा उसी में लगाते हैं। जब उन्हें वह नहीं मिलता तो वे गुरुजी के सिर पर चढ़ जाते हैं – 'मैं इतने सालों से यह सब कर रहा हूँ, फिर भी मुझे कुछ हासिल नहीं हुआ। शायद रास्ता गलत है, गुरु गलत है, साधना गलत है।' तरह-तरह के संदेह मन में आते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि हर कोई उपलब्धियों के बारे में सोचता है, न कि उन बाधाओं के बारे में जिन्हें उसे पार करना है।

इस युग में केवल एक ऐसे मनीषी हुए हैं जिन्होंने उपलब्धियों के बारे में नहीं, बल्कि बाधाओं के बारे में सोचा, और वे हैं हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानंद जी। उन्होंने इसे सरल शब्दों में समझाया है। उदाहरण के तौर पर नम्रता के भाव को लें। अपने अठारह सद्गुणों के गीत में उन्होंने इसे 'घमंड का अभाव' कहा है। बहुत-से लोग कह सकते हैं कि ये सब मात्र दार्शनिक बातें हैं। फिर भी, यदि आप समझ पाएँ तो आप महसूस करेंगे कि स्वामी शिवानंद जी लगातार उन बाधाओं की ओर इशारा करते थे जिन्हें आपको दूर करना है। घमंड एक बाधा है, यदि आप इसे हटा दें, तो आप मुक्त हो जाएँगे, आपका मार्ग प्रशस्त हो जाएगा। फिर अगली बाधा लें और उससे स्वयं को मुक्त करें। उन्होंने शांत होने के लिए नहीं कहा, बल्कि कहा कि शांति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करो और फिर शांति की स्थिति स्वतः ही उत्पन्न हो जाएगी। अधिकांश लोग शुरू से शांति, शांति, शांति कहते रहते हैं और कहीं नहीं पहुँचते। वह शांति आ नहीं सकती, क्योंकि आपके मन में अहंकार और घमंड बसते हैं। दस साल बाद वे गुरुजी के पास जाते हैं और कहते हैं, 'मुझे अभी भी शांति नहीं मिली है।' जब उन्होंने शांति की बाधाओं को दूर नहीं किया तो उन्हें शांति कैसे मिलेगी?

स्वामी शिवानंद जी ने इस बात को बहुत ही सुंदर और स्पष्ट रूप से समझाया है – आध्यात्मिक सजगता जगाने के लिए सबसे पहले एक मानसिक स्थिति विकसित करनी होगी। उस स्थिति की प्राप्ति में आने वाली बाधाओं को दूर करने से शुरुआत करो। जब आपको फसल उगानी होती है तो आप सबसे पहले जमीन तैयार करते हैं। आप कंकड़-पत्थर हटाते हैं, जमीन जोतते हैं, खाद डालते हैं, और फिर बीज बोते हैं। लेकिन जब आप आध्यात्मिक जीवन में आते हैं, आप कंकड़-पत्थर तो हटाते नहीं, फिर सोचते रहते हैं कि पौधे क्यों नहीं उग रहे।

## संस्कार ग्रहण करना

हमारे ऋषि-मनीषियों ने इस समस्या को बड़ी समझदारी से निपटाया। उन्होंने कहा कि व्यक्ति को जीवन के विभिन्न चरणों में अलग-अलग संस्कार दिए जाने चाहिए। तब उसकी विवेक-बुद्धि बढ़ेगी और जीवन में उन्नति होगी।

जब बच्चा पैदा होता है तो वह कोरे कागज की तरह होता है, उस पर कुछ भी नहीं लिखा होता। माता-पिता उस पर पहले शब्द लिखते हैं और ये पहले संस्कार बन जाते हैं। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, वह खुद लिखना शुरू करता है और संस्कारों को अपनाते जाता है। इसलिए, यदि संस्कृति में विभिन्न प्रकार के सकारात्मक संस्कार अंतर्निहित हैं, तो आप स्वाभाविक रूप से उन्हें अपनाते जायेंगे जिससे आप एक अच्छे इंसान बनेंगे।

इसी उद्देश्य से हमारे ऋषियों ने अनेक संस्कारों की व्याख्या की। आपको किसी भी पाश्चात्य दर्शन में इस प्रकार की सोच नहीं मिलेगी; पश्चिम में संस्कारों का कोई सिद्धान्त ही नहीं है। भारत में संस्कारों की परंपरा वैदिक काल से चली आ रही है। आपने गौतम ऋषि के बारे में सुना होगा। रामायण में एक प्रसंग है जहाँ ऋषि गौतम की पत्नी अहिल्या को श्राप से मुक्ति मिलती है और श्रीराम उन्हें पुनः मानव रूप प्रदान करते हैं। इससे संकेत मिलता है कि वे श्रीराम के काल, यानि त्रेता युग में रहते थे।

ऋषि गौतम ने गौतम स्मृति नामक एक ग्रंथ लिखा, जिसमें जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति को प्राप्त होने वाले चालीस संस्कारों का उल्लेख है। इस ग्रंथ

में वर्णित संस्कारों का एकमात्र उद्देश्य व्यक्ति को ज्ञान, विवेक और समझ से युक्त करना है। कहा जाता है, *'जन्मना जायते शूद्रः'* अर्थात् जब आप जन्म लेते हैं तो आप शूद्र के समान होते हैं। यहाँ शूद्र का तात्पर्य किसी जाति से नहीं है, बल्कि यह अज्ञान के अंधकार को दर्शाता है, जहाँ आप कुछ भी नहीं जानते। संस्कार आपको ज्ञान प्रदान करके उस अवस्था से ऊपर उठने में मदद करते हैं ताकि आपका पुनर्जन्म हो – *संस्कारात् द्विज उच्यते*।

जब आप पैदा होते हैं तो आप बस मांस का पिण्ड होते हैं जिसे अच्छे कपड़े पहनाए जाते हैं और सबकी गोद में दुलारा जाता है। आप न तो चल सकते हैं, न बोल सकते हैं और न ही आस-पास के दृश्यों को समझ सकते हैं, क्योंकि आपकी इंद्रियाँ और मन जागृत नहीं होते। आप एक कोरे कागज के समान होते हैं। फिर आपके माता-पिता उस पर चित्र बनाना शुरू कर देते हैं। ज्यादातर माता-पिता अपनी मर्जी के अनुसार चित्र बनाते हैं। वे अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए बच्चे को कुछ बनाना चाहते हैं, पर वे भूल जाते हैं कि बच्चा अपनी नियति खुद लेकर आया है। यह एक बहुत बड़ी भूल है।

श्री स्वामीजी बताया करते थे कि बचपन में उनकी माँ कहती थीं, 'बेटा, बड़े होकर तुम्हें एक समाजसेवी बनना चाहिए'। वे महात्मा गाँधी की अनुयायी थीं और सब तरह के सामाजिक कार्यों में संलग्न थीं। उनके पिता पुलिस अधीक्षक थे और वे कहते थे, 'बेटा, तुम्हें बड़े होकर पुलिस अधिकारी बनना चाहिए।' कोई कहता था, 'इंजीनियर बनो' तो कोई कहता, 'डॉक्टर बनो'। हर कोई उन्हें अपनी इच्छानुसार कुछ बनाना चाहता था। कोई यह नहीं चाहता था कि बच्चा वही बने जो वह बनना चाहता है। हम बच्चों के मन को इसी तरह भरते जाते हैं। आज दुनिया में मदालसा जैसी कोई माँ नहीं है जो अपने बेटे से कहे – *शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसार-माया-परिवर्जितोऽसि,* अर्थात् तुम शुद्ध, प्रबुद्ध और दोषरहित हो, संसार की माया से ऊपर उठो।

कोई भी माता-पिता बच्चों को अच्छा बनने और अच्छा करने की शिक्षा नहीं देते। इसके बजाय, बच्चों को प्रतिस्पर्धा करना सिखाया जाता है, उन्हें बताया जाता है कि उन्हें अपने दोस्तों से बेहतर करना है। जब वे अपनी परीक्षा की रिपोर्ट लेकर घर आते हैं, तो उनकी उपलब्धियों की सराहना करने के बजाय पहला सवाल यही होता है, 'तुम्हारे दोस्त को कितने नम्बर मिले?' इस तरह बच्चे का दिमाग भ्रष्ट होते जाता है, और फिर आप उम्मीद करते हैं कि वे आज्ञाकारी बनें और आपकी हर बात मानें!

मैं आपको अपने बारे में कुछ बताता हूँ। कुछ दिन पहले मैं 'योग दीक्षा पत्र' नामक पुस्तक पढ़ रहा था। इसमें श्री स्वामीजी द्वारा मेरी माँ को लिखे गए उस समय के पत्र हैं जब मैं गर्भ में था। उन्होंने माँ से कहा था कि उन्हें इस समय रामायण, भगवद्गीता, वेद और उपनिषद पढ़ने चाहिए, भजन, कीर्तन और सत्संग करना चाहिए और शुद्ध भोजन करना चाहिए। उन्होंने माँ से कहा कि वे सिनेमा या ऐसी अन्य गतिविधियों में जाने के बजाय इन गतिविधियों में समय बिताएँ ताकि बच्चे पर कोई नकारात्मक प्रभाव न पड़े। मेरे जन्म के बाद उन्होंने माँ से कहा कि वे मुझे बच्चों की कॉमिक्स के बजाय धर्मग्रंथ पढ़ने को दें। देखने में ये छोटी-छोटी बातें लगती हैं, लेकिन इनके बारे में विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि इनका मन पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है। जब आप बचपन से ही आदर्श व्यक्तियों के बारे में प्रेरक कहानियाँ पढ़ते और सुनते हैं, तो वे आपके मन पर अंकित हो जाती हैं, वे एक संस्कार बन जाती हैं। आपने अभिमन्यु की कहानी सुनी होगी, उसने गर्भ में ही चक्रव्यूह भेदने की विद्या प्राप्त कर ली थी। ये सिर्फ प्राचीन कथाएँ नहीं हैं, आधुनिक युग में भी गर्भस्थ शिशु पर सकारात्मक प्रभाव डालने के संबंध में शोध हुए हैं।

जब मैं अमेरिका में था, उस समय मैंने एक प्रयोग किया। मैं गर्भवती महिलाओं के एक समूह को योग सिखा रहा था। मैं उन्हें ऐसे उपयोगी आसन और प्राणायाम सिखाता था जिनसे प्रसव सुचारू रूप से हो सके। साथ ही, मैं उन्हें भजन-कीर्तन का टेप चलाकर पेट पर ईयरफोन रखने को कहता था। इसे बच्चा सुनेगा, माँ नहीं। यह एक प्रकार की योगनिद्रा है, जिससे गर्भ में पल रहे बच्चे को जानकारी दी जाती है। या फिर यह नींद में भी किया जा सकता है, जैसा श्री स्वामीजी ने मेरे साथ किया था। चूँकि उस समय मन एक कोरे कागज की तरह होता है, इसलिए यह एक गहरी छाप छोड़ता है।

सुबह तीन मंत्रों की साधना करने का उद्देश्य भी यही है। आप इसे जगते ही करते हैं, बिना शौच, स्नान आदि किये। उस समय मन अर्धजागृत अवस्था में होता है, और मंत्र एक संकल्प की तरह मन में प्रवेश कर सकते हैं। जब आप कुछ समय तक इस साधना को करते हैं तो यह एक आदत बन जाती है। इतनी गहरी कि अगर किसी कारण आप इसे एक दिन नहीं करते तो आपको बहुत अजीब लगता है। सुबह मन की शांत अवस्था में मंत्रों का मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वे एक सकारात्मक स्थिति, एक संस्कार का निर्माण करते हैं।

*– 16 जुलाई 2018, गंगा दर्शन*

# कल्पतरु की छाँव में

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

**क्या आत्म-साक्षात्कार के लिए कर्मयोग आवश्यक है? यदि ऐसा है तो वह किस प्रकार किया जाए?**

हाँ, यह सही है। यदि तुम कर्मयोग से जी चुराते हो तो तुम वेदान्त के सार को कभी आत्मसात् नहीं कर पाओगे। निष्काम कर्मयोग से तुम्हें चित्त-शुद्धि प्राप्त होगी जो अन्ततः तुम्हें आत्म-साक्षात्कार तक पहुँचा देगी।

प्रेम के साथ हर किसी की सेवा करो। बगैर किसी फल की आशा के, बगैर कर्त्तापन के भाव के। अपने आप को प्रभु का एक निमित्त मात्र समझो। गरीबों और बीमारों की नारायण भाव से सेवा करो। किसी भी स्थान, व्यक्ति या वस्तु से लगाव मत रखो। सफलता-विफलता, हानि-लाभ, सुख-दुःख – सभी परिस्थितियों में अपने मानसिक संतुलन को हमेशा बनाये रखो। सभी क्रिया-कलापों के बीच मन को आत्मा पर केन्द्रित रखो। तभी तुम एक सच्चे कर्मयोगी बनोगे। सही भाव और दृष्टिकोण से किया गया कर्म उत्थान की ओर ले जाता है। यदि व्यक्ति तुम्हारी हँसी उड़ायें, तुम्हें मारें-पीटें, तब भी तटस्थ बने रहो, अपनी साधना को जारी रखो।

**मैं पिछले तीन वर्षों से आध्यात्मिक अभ्यास कर रहा हूँ, परन्तु मुझे अपने अन्दर विकास के कोई लक्षण नहीं दिखलाई देते, ऐसा क्यों?**

विकास तो अवश्य हुआ है। तुम्हारी धारणा शक्ति अब पहले से ज्यादा स्थिर और दृढ़ है। लेकिन एक बात याद रखो, आध्यात्मिक जगत् में विकास मापने

का कोई पैमाना नहीं होता। तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति मापने के लिए कोई बैरोमीटर या थर्मामीटर जैसा यंत्र नहीं है। तुम अभी अपना आधा मन ही ईश्वर को दे रहे हो। अपनी अस्त-व्यस्त और बिखरी मानसिक किरणों को एकत्र करो और अपना पूरा का पूरा मन ईश्वर को अर्पित कर दो। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम उसे तत्क्षण अनुभव कर लोगे।

## तीर्थयात्रा से व्यक्ति कैसे लाभान्वित होते हैं?

इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक तीर्थयात्री को स्वयं देना चाहिए। तीर्थयात्रा का आध्यात्मिक लाभ इस बात पर निर्भर करता है कि आपके दिल में कितनी श्रद्धा है। श्रद्धा ही मनुष्य की वास्तविक प्राणशक्ति है। इसके बिना कोई भी आध्यात्मिक उपलब्धि सम्भव नहीं। यदि कोई तीर्थयात्री सच्चे हृदय से यह विश्वास करे और मन में यह प्रबल धारणा बना ले कि तीर्थस्नान करने से उसके सारे पाप धुल जायेंगे और वह संसार चक्र से सदा के लिए छूट जायेगा तो कोई कारण नहीं कि वास्तव में ऐसा न हो। बद्रीनाथ जैसी तीर्थयात्रा तुम्हारे सब पापों को धोकर तुम्हें आत्म-साक्षात्कार का महान् लक्ष्य प्राप्त करने योग्य बना सकती है, बशर्ते तुममें इसके प्रति गहरी आस्था और श्रद्धा हो।

यह बात याद रखो कि इस आस्था की कसौटी यह है कि तीर्थाटन से लौटने पर तुम्हारी स्थिति कैसी है। यदि लौटने के बाद तुम यह प्रमाणित कर दो कि तुमने अपने सब दोषों और दुर्गुणों को धो दिया है, तुम्हारे सारे बुरे संस्कार उन पवित्र नदियों के जल में धुल गये हैं, तुम तीर्थक्षेत्र के सात्त्विक स्पन्दनों से भर गये हो और अब तुम एक शुद्ध, नेक, सदाचारी, प्रेममय जीवन जी रहे हो, तब तुम सचमुच मुक्त हो गए हो। तीर्थयात्रा ने अपना उद्देश्य पूरा किया। कुछ तीर्थयात्री वास्तव में ऐसी आध्यात्मिक ऊँचाइयों को प्राप्त भी कर लेते हैं। बेशक उनकी संख्या कम होती है और वे अपनी इस उपलब्धि का ढिंढोरा भी नहीं पीटते।

## जब ईश्वर की कृपा ही मेरे लिए सब करेगी तब मैं क्यों साधना करूँ?

यह एक गलत धारणा है। ईश्वर उनकी सहायता करता है जो अपनी मदद स्वयं करते हैं। ईश्वर की कृपा उन्हें ही प्राप्त होगी जो पुरुषार्थ करेंगे। दैवी अनुग्रह व्यक्ति के समर्पण के अनुपात में ही प्राप्त होगा। जितना अधिक समर्पण, उतना अधिक अनुग्रह। तुम यह उम्मीद मत रखो कि ईश्वर तुम्हारे लिए समर्पण भी

कर देंगे। उठो ओर स्वयं इस मार्ग पर आगे बड़ो। परिश्रम करो, संघर्ष करो, ईश्वर अवश्य तुम पर कृपावृष्टि करेंगे।

मीरा ने पूरी तरह से आत्म-समर्पण कर दिया था। राज्य, पति, रिश्तेदार, मित्र, सम्पदा – प्रत्येक चीज त्याग दी थी उसने। वह दिन-रात श्रीकृष्ण को याद करती और उनकी याद में प्रेमाश्रु बहाती थी। वह एकाग्रचित्त होकर श्रीकृष्ण का गुणगान करती रहती थी। उसने भोजन त्याग दिया था, उसका शरीर दुर्बल हो गया था, लेकिन उसका मन पूरी तरह से श्रीकृष्ण में रम गया था। तब जाकर श्रीकृष्ण ने उस पर कृपावृष्टि की।

**मैं मानसिक जप नहीं कर पाता हूँ, मुझे होठ हिलाने पड़ते हैं। मंत्र की मानसिक आवृत्ति में समय भी बहुत लगता है और अक्षरों का उच्चारण भी सही नहीं होता। कृपया इसका कारण बतलाएँ। जब मैं जप के साथ ध्यान करता हूँ तब मैं अपने इष्ट पर एकाग्रता नहीं बनाये रख पाता। यदि मैं इष्ट पर मन लगाता हूँ, तो माला और जप भूल जाता हूँ। और जब माला फेरने पर ध्यान देता हूँ, तब भगवान पर से ध्यान हट जाता है।**

तुम्हें बैखरी जप से शुरुआत करनी होगी जिसमें मंत्र का ऊँचे स्वर में उच्चारण किया जाता है। इसके बाद उपांशु जप का अभ्यास करो जिसमें मंत्र फुसफुसाकर कहा जाता है। उपांशु जप का कम-से-कम तीन महीने तक अभ्यास करने पर ही तुम मानसिक जप करने योग्य बन सकोगे। मानसिक जप

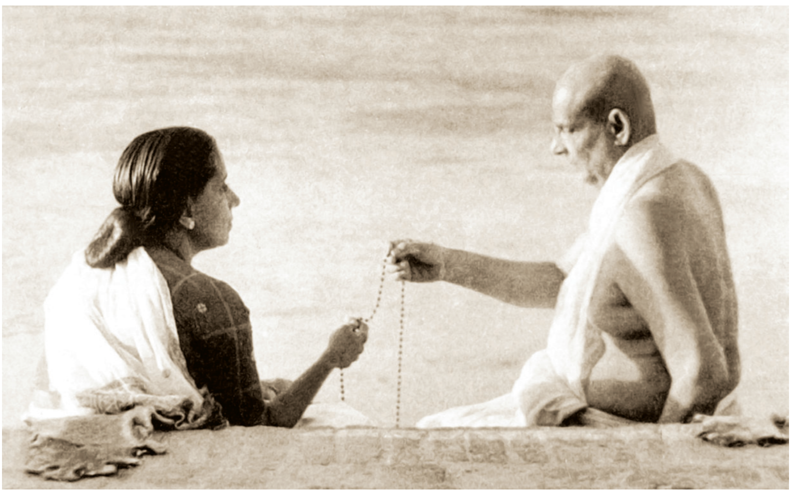

अधिक कठिन है। मन से अन्य विचारों के निराकरण के बाद ही मानसिक जप में आनन्द आने लगता है। नहीं तो तुम्हारा मन विषयों के इर्द-गिर्द ही घूमता रहेगा और तुम मानसिक जप नहीं कर पाओगे।

तुम मानसिक जप और इष्ट के स्वरूप का मानस-दर्शन, दोनों साथ-साथ नहीं कर पाओगे। आरम्भ में तुम्हें अपने इष्ट के चित्र या मूर्ति को एकटक देखते हुए मानसिक जप करना चाहिए। माला फेरना प्रारम्भिक साधकों के लिए अवलम्बन है। यह मन को ईश्वर की ओर मोड़ता है। जब तुम मानसिक जप में भली-भाँति स्थापित हो जाओगे तब माला की आवश्यकता नहीं रहेगी। लेकिन तब तक तुम्हें माला का सहारा लेना होगा और साथ ही अपने इष्ट के चित्र पर ध्यान करना होगा।

मानसिक जप मन को ध्यान के लिए तैयार करता है। यदि तुम भगवान के स्वरूप पर अन्य विचारों के आए बिना ध्यान कर सको, तो जितनी देर तक चाहो ध्यान कर सकते हो। लेकिन जैसे ही मन में सांसारिक विचार आने लगें, पुनः मानसिक जप शुरू कर दो। ध्यान की अवस्था अनेक वर्षों के निरन्तर अभ्यास से आती है। इसके लिए बहुत धैर्य की आवश्यकता है। नौसिखिये अभ्यासी कुछ ही दिनों के अभ्यास के बाद ध्यान में दक्षता के सपने देखने लगते हैं और जब ऐसा नहीं होता तो हताश होकर अभ्यास छोड़ देते हैं।

## ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास न करने से क्या नुकसान है ?

यदि हमें ईश्वर में विश्वास नहीं तो हम बार-बार इस संसार में जन्म लेंगे और सांसारिक दुःखों और तकलीफों में फंसते रहेंगे। श्रद्धा-रहित एवं शंकाग्रस्त मनुष्य विनाश को प्राप्त होते हैं। वे रत्ती भर सुख और आनन्द भी नहीं प्राप्त करते। उनके लिए न यह लोक है, न परलोक।

जिन्हें ईश्वर में विश्वास नहीं, वे सही और गलत में फर्क नहीं जानते। वे अपनी विवेक शक्ति खो देते हैं। वे मिथ्यावादी, घमण्डी ओर अहंकारी होते हैं। वे अत्यधिक लोभ, क्रोध और वासना के शिकार होते हैं। वे गलत तरीके से धन अर्जित करते हैं। उनका स्वभाव आसुरी वृत्ति वाला होता है। वे कई प्रकार के जघन्य अपराध करते हैं। उनके जीवन में न कोई आदर्श होता है, न लक्ष्य। वे जन्म पर जन्म लेते रहते हैं और अज्ञान के अन्धेरे में भटकते रहते हैं।

करीब डेढ सौ साल पहले की बात है, दक्षिण भारत के तिरुचिरापल्ली जिले के नेरूर गाँव में एक बहुत प्रसिद्ध योगी-ज्ञानी संत हुए जिनका नाम था

सदाशिव ब्रह्मेन्द्र सरस्वती। उन्होंने ब्रह्म-सूत्र-वृत्ति और आत्म-विद्या-विलास जैसी अनेक पुस्तकें लिखीं। उन्होंने अपने जीवन में बहुत सारे चमत्कार भी किये। एक बार जब वे कावेरी नदी के तट पर समाधि में लीन थे, तब अचानक नदी में बाढ़ आ गई जो उन्हें दूर बहाकर ले गई। वे ढेर सारी मिट्टी के नीचे धँस गए। वहाँ खेतों पर मजदूर काम करने आये। जब उन्होंने वहाँ कुदाल चलाया वह उनके सिर पर जा लगा और थोड़ा खून निकला। तब उन्होंने वहाँ खुदाई की और उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने वहाँ एक योगी को समाधि में बैठे पाया!

एक बार वे अवधूत अवस्था में एक मुसलमान सामंत के ज़नाना में प्रवेश कर गए। सामंत उन्हें नग्न अवस्था में देखकर क्रोध से तिलमिला उठा। उसने उनपर तलवार चलाई और उनकी एक बाँह काट डाली। लेकिन सदाशिव ब्रह्मेन्द्र बगैर कुछ बोले वहाँ से चले गये। उनके चेहरे पर जरा भी दर्द का भाव नहीं था। सामंत को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि यह व्यक्ति जरूर कोई सिद्ध महात्मा है। उसे अपने कृत्य पर बहुत पश्चात्ताप हुआ और वह सन्त से क्षमा माँगने उनके पीछे दौड़ पड़ा। सदाशिव ब्रह्मेन्द्र को तो पता ही नहीं था कि उनकी बाँह कट गई है। जब सामंत ने उन्हें बताया कि उसके शिविर में क्या घटित हुआ था, तब सदाशिव ने उसे क्षमा कर दिया और अपनी उस कटी हुई बाँह का धीरे से स्पर्श भर किया। तुरन्त ही वहाँ एक नई बाँह आ गई!

सदाशिव ब्रह्मेन्द्र के जीवन ने मेरे मन पर बहुत गहरा प्रभाव डाला। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मन, इन्द्रियों और विषय-वस्तुओं के स्थूल संसार के पीछे एक सूक्ष्म, दिव्य लोक छिपा हुआ है। एक सामान्य व्यक्ति को तो जरा-सा काँटा चुभ जाए तो वह कराह उठता है। लेकिन सदाशिव ब्रह्मेन्द्र इस स्थूल संसार के प्रति बिल्कुल सचेत नहीं थे। जब उनकी बाँह काटी गई तो उन्हें इसका पता तक नहीं चला। इसका मतलब वे पूरी तरह उस दिव्य चेतना में तल्लीन थे। जब मैंने उनके जीवन के इस अद्भुत प्रसंग को सुना तब मुझे दिव्य सत्ता और शाश्वत दिव्य जीवन की यथार्थता के प्रति दृढ़ विश्वास हो गया। एक ऐसा जीवन जहाँ सभी दुःख समाप्त हो जाते हैं, सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं और मनुष्य परम शांति, परम ज्ञान और परम आनन्द प्राप्त करता है। इसलिए दैवी सत्ता के अस्तित्व पर शंका करने का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए।

# दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान किसी भी निम्नलिखित लिंक पर क्लिक करके दिया जा सकता है।

**SB Collect Online** | **HDFC Online**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

## योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

# योग चक्र 1

## योग का समग्र स्वरूप

*स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती*

पृष्ठ 162, ISBN: 978-93-48677-41-9

अक्टूबर 2013 में मुंगेर में आयोजित विश्व योग सम्मेलन में स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती ने योग के नये अध्याय की घोषणा की। पचास वर्षों तक विश्व में योग प्रचार करने के पश्चात् बिहार योग विद्यालय अब अगले पचास वर्षों में एक नयी समझ और प्रणाली के साथ प्रवेश कर रहा है। इस पुस्तक में स्वामीजी ने योग के उद्गम तथा इसके विकास के तीन काल-खण्डों पर प्रकाश डालते हुए योग की विभिन्न शाखाओं को निरूपित किया है

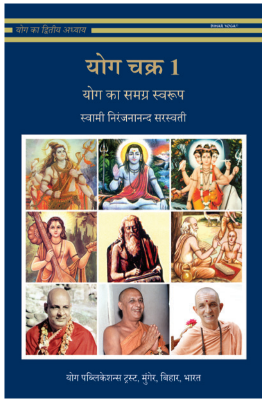


नया प्रकाशन

**अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें –**

**योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट**, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 9162783904, 9835892831 या **www.satyamyogaprasad.net** वेबसाइट देखें।

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

# वेबसाइट और एप्प

### www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

### सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

### यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

### योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

*www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/*
*www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/*

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

### अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

ISSN 0972-5725

# योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2025-26

## योगपीठ कार्यक्रम

| | |
|---|---|
| *जनवरी 18–23* | *बसंत पंचमी महोत्सव तथा बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस* |
| *फरवरी 14* | *बाल योग दिवस* |
| *मई 6* | *मुंगेर आगमन* |
| *नवम्बर 19–22* | *पद्म जयन्ती – योगनिद्रा संगोष्ठी* |
| *दिसम्बर 27–31* | *पद्म जयन्ती – यौगिक जीवनशैली महोत्सव* |
| *प्रत्येक शनिवार* | *महामृत्युंजय हवन* |
| *प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख* | *गुरु भक्ति योग* |

## बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

| | |
|---|---|
| *नवम्बर 16–जनवरी 30 2026* | *संन्यास अनुभव* |
| *फरवरी 1–अप्रैल 30* | *संन्यास अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)* |
| *फरवरी 21–27* | *पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल (हिन्दी)* |
| *मार्च 6–12* | *प्राणायाम – स्वस्थ जीवन के लिए श्वसन प्रशिक्षण (हिन्दी)* |
| *अप्रैल 4–10* | *धारणा प्रशिक्षण (अंग्रेजी)* |
| *सितम्बर 28–अक्टूबर 6* | *हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण* |
| *अक्टूबर 11–19* | *राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण* |
| *अक्टूबर 25–नवम्बर 2* | *क्रिया योग एवं तत्त्व शुद्धि प्रशिक्षण* |
| *अक्टूबर 2026–अक्टूबर 2027* | *संन्यास जीवनशैली अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)* |

## बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

| | |
|---|---|
| *मार्च–अप्रैल* | *द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)* |
| *अप्रैल 1–30* | *पारम्परिक योग प्रशिक्षण (अंग्रेजी)* |
| *नवम्बर–दिसम्बर* | *द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)* |

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें